श्रीकृष्ण-सन्देश

जन्माष्टमीके अवसरपर संघके माननीय सदस्य श्रीलक्ष्मीनिवासजी बिरला श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर निर्मित हो रहे विशाल भागवत-भवनका निरीक्षण करते हुए
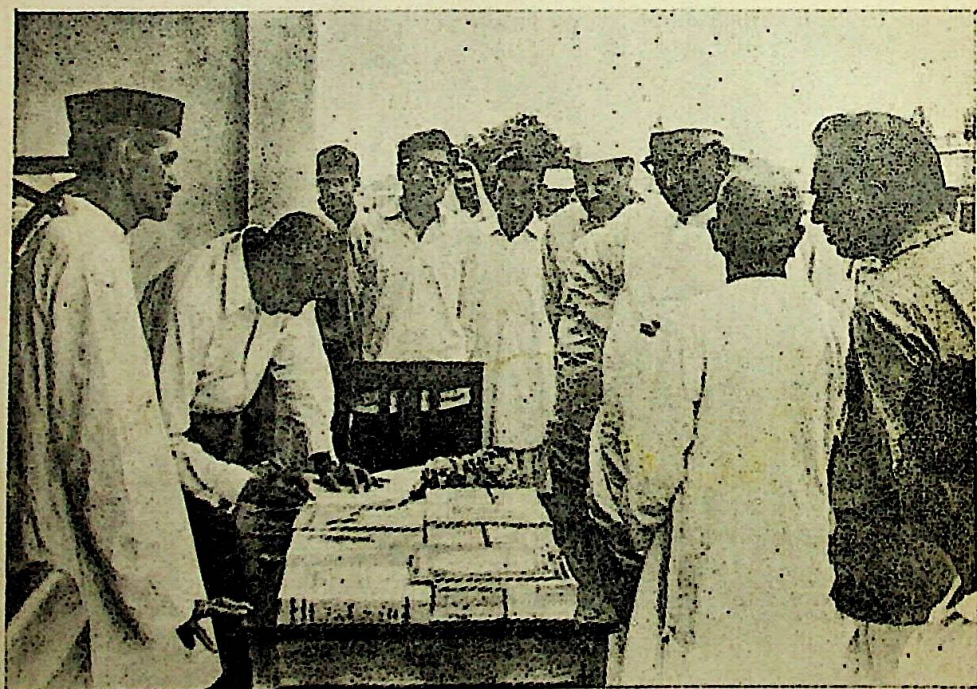
श्रीलक्ष्मीनिवासजी बिरला श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी दर्शक-पंजिकामें अपनी श्रद्धाञ्जलि अंकित कर रहे हैं

श्रीकृष्ण-सन्देश

[धर्म, अध्यात्म एवं संस्कृति-प्रधान मासिक पत्र]

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा

दूरभाष : ३३८

वार्षिक शुल्क

सात रुपये

आजीवन शुल्क

एकसौ इक्यावन रुपये

वर्ष : ४] सितंबर १९६८ [अंक : २

विषय-सूची

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान,
नमन, वंदन और अर्चन

आज जन्माष्टमीके दिन यहां आकर अत्यन्त आनन्द हुआ।

लक्ष्मीनिवास बिरला,
बिरला निकेत, कलकत्ता।

प्रियवर पंडित देवधरजी शर्माकी कृपासे आज भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। भागवत-भवनकी योजनाका जो दर्शन यहाँ दिखाई पड़ा, वह असाधारण और चमत्कारी है। यह योजना जब पूर्ण रूपसे संपन्न होजायगी तो न केवल मथुरामें, अपितु सम्पूर्ण भारतके दर्शनीय स्थानोंमें इसकी गणना होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। यह योजना शीघ्र संपन्न हो, भगवान् से यही प्रार्थना है।

जनार्दन भट्ट
संयुक्त मंत्री,
अखिल भारतीय आर्य हिन्दू धर्म सेवा संघ,
दिल्ली।

आज भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिका दर्शन कर अपार हर्ष हुआ। जो योजना चल रही है, वह अत्यन्त सराहनीय है और संयोजकोंका यह कार्य अतिशय भावपूर्ण है। भगवान् कृष्ण इन्हें पूर्ण सफलता दें।

सीताराम भार्वासिहका
स्वदेशी हाउस, कानपुर।

यह स्थान बड़ा भावुक है। दर्शन करके बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमि हिन्दुओंकेलिए पूजनीय है और उनके पुण्य-प्रभावसे ही इसका पुनरुद्धार हो रहा है।

रुक्मिणी सेठ,
अजुध्या शुगर मिल,
राजाका सहसपुर
मुरादाबाद।

भगवान् श्रीकृष्णके इस परम पावन जन्मस्थानके सुन्दर निर्माण-कार्यको देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। जो महानुभाव इस धार्मिक कार्यकी पूर्तिके निमित्त सत्प्रयास कर रहे हैं, वे धन्यवादके पात्र हैं। भगवान् इस सत्संकल्पको अवश्य पूर्ण करायेंगे।

मुकुन्दीलाल द्विवेदी
आयुर्वेद निदेशक उत्तरप्रदेश,
लखनऊ।

प्यारे भगवान् श्रीकृष्णके जन्मस्थानमें बिराजित मूर्ति केवल मूर्ति ही नहीं, प्रत्यक्ष भगवान्का माधुर्य रूप है, जो साक्षात् चेतनाकी अनुभूति देता है और उससे अन्तःकरणमें अत्यन्त प्रसन्नताका अनुभव होता है।

स्वामी शिवानंद-कृष्णानंद
ऋषिकेश (हरिद्वार)।

दो वर्ष पश्चात् आज मैंने श्रीकृष्ण-जन्मभूमिके पुनः दर्शन किये। यहाँ चल रहे कार्यकी प्रगति देखकर प्रसन्नता हुई। इस पुनीत कार्यकेलिये यहांका न्यासमंडल बधाईका पात्र है। मुझे विश्वास है कि कुछ समयके पश्चात् यहांका नियोजित कार्य पूर्ण हो जायगा, जो भारतीय संस्कृतिका मुख्य केन्द्र होकर समूचे देशके लिये प्रेरणाका स्रोत बन जायगा।

जगमोहनलाल श्रीवास्तव
भूतपूर्व जज हाईकोर्ट, ग्वालियर तथा
अध्यक्ष विधानसभा तथा न्याय विधि व राजस्व मंत्री
मध्यप्रदेश शासन।

मैंने आज अपनी पत्नी, भगिनी व श्री बी० सी० जौहरी सिविल व सेसन्स जजके साथ जन्मभूमि मन्दिरके दर्शन किये। भगवान्के जन्मस्थान, चबूतरा व मन्दिरका पुनः निर्माण अवलोकनकर महान् हर्ष हुआ, जहाँ भगवान्ने मानव मात्रके कल्याणके हेतु जन्म धारण किया।

बलराम सिन्हा,
जिला जज, मथुरा।

भगवान् कृष्णके जन्मस्थानकी शोभा देखकर अपार आनन्द और सम्मान मिला।

जे० एम० स्टेनलो
असिस्टेन्ट प्रोफेसर आफ रिलीजिअस
लौरेन्स यूनिवर्सिटी (यू० एस० ओ०)

भव्य मन्दिर के दर्शनोंका सौभाग्य मिला। एतदर्थ धन्यवाद।

जार्ज ए० बौरुकस्ट
फ्रैन्च जर्नलिस्ट
फ्रैन्च।

श्रीकृष्ण-सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ।।

वर्ष ४ } मथुरा, सितंबर १९६८ { अङ्क २

सरस सुअवसर लहियै

कृपा जो राधा जू की चहियै ।
तौ राधावर की सेवामें तन-मन सदा उमहियै ।।
माधव की सुख-मूल राधिका, तिन के अनुगत रहियै ।
तिन के सुख-संपादन कौ पथ सूधौ अबिरत गहियै ।।
राधा-पद-सरोज-सेवा में चित निज नित अरुझइयै ।
या बिधि स्याम-सुखद राधा-सेवा सौं स्याम रिझइयै ।
रीझत स्याम, राधिका रानी की अनुकंपा पइयै ।
निभृत निकुंज जुगल-सेवा कौ सरस सुअवसर लहियै ।।

—•—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोर्कणिकारम् ।
विभ्रद्वासः कनक कपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रंध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोप वृन्दैः-
र्वृंदारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीत कीर्तिः ।।

नवजलधरवर्णं चम्पकोद्भासि कर्णं विकसित नलिनास्यं विस्फुरन्मन्दहस्मिम् ।
कनक रुचिदुकूलं चारु बर्हावचूलं किमपि निखिल सारं नौमि गोपी कुमारम् ।।

रासका रहस्य

डा० श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें २९ से ३३ वें अध्याय तक भगवान्की रासलीलाका प्रसंग है। इसीको 'रासपंचाध्यायी' कहते हैं। इस रासपंचाध्यायीमें श्रीमद्भागवत वर्णित तत्वोंके सारभूत परम तत्वका परमोज्ज्वल प्रकाश है। यह वस्तुतः श्रीमद्भागवतके पंच प्राण स्वरूप है। श्रीमद्भगवद्गीताकी जहाँ समाप्ति होती है, वहाँ से श्रीमद्भागवतका आरम्भ होता है। गीताकी समाप्ति 'सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज' पूर्ण शरणागति में है। श्रीमद्भागवतके श्रोता हैं पूर्ण शरणागत, विवेक-वैराग्य सम्पन्न महाराज परीक्षित और वक्ता हैं ब्रह्मविद्वरिष्ठ जीवनमुक्त महाराज श्रीशुकदेवजी। इन पाँच अध्यायोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी परम दिव्य अन्तरग लीलाका, निज स्वरूपभूता महाभावरूपाह्लादिनी शक्ति श्रीराधा रानी तथा उन्हींकी कायव्यूहस्वरूपा गोपांगनाओंके साथ होनेवाली भगवान् की रसमयी लीलाका वर्णन है। इस मधुमयी रसमयी दिव्य लीलाने आसेतु हिमाचल हमारे सम्पूर्ण देशके कवियों और रसिकोंके हृदयोंको रससे नहलाया है। दक्षिण भारतके आलवार सन्तों, महाराष्ट्रके वारकरी सन्तों, व्रजके लीलानुरागी भक्तों और वंगाल, उत्कल, आसाम तथा नैपालके वैष्णव साधकों और महाजनोंका यह कण्ठहार है और कहा जासकता है कि भगवान्की इस एक लीलाने हमारे देशकी चिन्तनधारा एवं भावनालोक को जितना प्रभावित और आलोकित किया है, उतना कोई भी विचारधारा या भावधारा नहीं कर सकी है। हमारे आचार्योंमें मध्व, निम्बार्क, वल्लभ, राधावल्लभ, चैतन्य सबके सब इस भावलोकसे आलोक ग्रहण करते हैं और इनका दर्शन भगवान्की इस दिव्य लीलासे अत्यधिक प्रभावित और अभिभूत है। सूरदास, नन्ददास, हितहरिवंश तथा अष्टछापके समस्त व्रज काव्यके प्राणोंके प्राणमें भगवान् श्रीकृष्णकी यह रासलीला ही गूँज रही है। रसखान, रहीम, नजीर, ताज आदि अनेक मुसलमान हरिजनोंके हृदयोंमें रासकी

गूँज है। अन्दाल और मीराकी तो पूछना ही क्या है? नन्ददासजी इस लीला पर इतने मुग्ध थे कि रास पंचाध्यायीका ब्रजभाषामें पूरा का पूरा अनुवाद ही कर डाला। वंगीय और गुजराती काव्यका अधिकांश रासलीलाके रससे आप्लावित है।

हमारे देशकी विविध नृत्य शैलियोंपर भी रासनृत्यका विशिष्ट प्रभाव स्पष्ट है। आसामका मणिपुरी नृत्य और गुजरातका गरबा नृत्य तो स्पष्टतः इससे प्रभावित है ही, उत्तर भारतके कत्थक नृत्य, सरायकेला खरसावांके छाउ नृत्य, दक्षिण भारतके कथाकली और भारत नाट्यम् नृत्य भी इसके प्रभावसे अछूते नहीं हैं। इतना ही नहीं, हमारे देशमें—पंजाब, काश्मीर, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, विहार, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्योंमें लोकनृत्योंकी जो विभिन्न शैलियाँ हैं, उनपर भी रासनृत्यकी छाया स्पष्ट है। आदिवासी नृत्योंको देखनेवाला कोई भी व्यक्ति उनपर पड़े रासके प्रभावको आसानीसे पकड़ सकेगा। चित्रकलाके विविध स्कूलों और कलमोंपर—राजा रविवर्मासे लेकर नन्दलाल बोस, असितकुमार हलदार, कनुदेसाई, रामप्रसाद, सौदामिनी महारथी, जगन्नाथ, शकुन्तला आदि सभी चित्रकारोंकी 'कलम' पर रासका रस छाया हुआ है। हमारे कांगड़ा स्कूल, गांधार स्कूल, शान्तिनिकेतन स्कूल, मोगल स्कूल, राजपूत स्कूल, पटना स्कूल आदि सभी चित्रकला सम्प्रदायों पर रासका प्रभाव है—वेशभूषा, पहनावा घूमघुमारे घांघरे, कसी चोलियाँ, वेलबूटेदार ओढ़नियाँ, झूमखाती वेणी विशेष रूपमें द्रष्टव्य हैं। हमारी राग-रागिनियोंमें से सैकड़ोंका उद्भव राससे ही हुआ है। वाद्ययन्त्रोंमें सारंगी और मृदंगका आविर्भाव राससे ही हुआ है। इस प्रकार हमारे देशकी विविध ललित कलाओं काव्य, चित्र, संगीत, नृत्य, आदिकी अन्तरात्माको रासने प्रभूत रूपमें प्रभावित किया है। कृष्ण-भक्त रसिक कवियोंकी तो वात ही क्या है, निर्गुण सन्तोंने प्रतीक रूपमें रासके आनन्दको ही 'रसगगनगुफामें अजर झरें'की अभिव्यंजना दी है।

श्रीमद्भागवतमें रासका प्रकरण यों है—

शरदकी शोभनीय यामिनीमें यमुनाके तटपर दूर तक फैली हुई लहराती हुई कुंज कुटीरमें चन्द्रज्योत्सना छिटकी बिखरी है। यमुनाके नीले-नीले जल-प्रवाहपर भगवान् चन्द्रदेव अमृत-वर्षा कर रहे हैं। वृन्दावनकी समस्त वनभूमि मधुमयी हो गयी है। निर्मल ज्योत्स्नामें स्नान कर कुसुमोंसे लदी तरुलताएँ, ज्योत्स्नाप्लावित यमुनाका पुलिन आज किसी अपूर्व आनन्दमें 'किसी'के साथ 'क्रीड़ा' करनेकी तैयारीमें है। दीर्घ प्रवासके पश्चात् घरमें आया हुआ प्रियतम जैसे अपने अत्यन्त सुखद हाथोंसे अपनी प्रेयसीका मुखकमल अरुण वर्ण केसरसे रंग दे वैसे ही नक्षत्रपति चन्द्रमाने गगन मण्डलमें उदित होकर अपने सुखमय सुस्निग्ध किरण रूपी करकमलों द्वारा पूर्वदिशारूपी वधूका मुख अरुण वर्ण केसरसे रंग दिया।

सैकड़ों कुंज कुटीरें हैं। श्रीभगवान्की विहार-वासनाने आज इन्हें पागल बना दिया है। 'नाम समेतं कृत संकेतं वादयते मृदुवेणुम्' वंशीमें गोपियोंका नाम ले ले कर ललित संकेत कर रहे हैं। वंशी बजती है और फिर—

वंशी धुनि सुनि गोपकुमारी ।
अति आतुर ह्वै चली स्याम पै तन मन को सब सुरत्ति बिसारी ।
गल को हार पहिर निज कटि महँ कटि की किंकिणि गल महँ धारी ।।
कान बुलाक, कपोलन बेंदी, नाक में पहिरि कान की बारी ।
एक नैन अंजन बिनु सोहै एक नैन में काजर सारी ।।
नारायन जो जैसे हती घर सो तैसेहि उठि विपिन सिधारी ।।

प्रियतम भगवान्‌का आह्वान सुनते ही ऐसी दशा हुई कि श्रीकृष्णसे मिलनेकेलिये गोपियां जो दूध दुह रही थीं वे दुहना बीचमें ही छोड़कर चल दीं । कुछ चूल्हे पर दूध औंटा रही थीं, वे दूध उफनता हुआ छोड़कर तथा कुछ दूसरी गोपियाँ लप्सी पका रही थीं उसे चूल्हेसे उतारे बिना ही ज्यों की त्यों छोड़कर, कुछ छोटे बालकोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, कुछ अपने पतियोंकी सेवा-सुश्रुषा कर रही थीं वे सेवा-सुश्रुषा छोड़ कर और कुछ स्वयं भोजन कर रही थीं, वे भोजन करना छोड़कर प्रियतम श्रीकृष्णके पास चल पड़ीं—वे सबकी सब 'व्यत्यस्त वस्त्राभरणाः' थीं—उलटे-पलटे वस्त्राभूषण धारण कर—जैसे ओढ़नीको कमरमें बाँधकर, लहंगा ओढ़कर, गलेका हार कमरमें पहनकर और करधनीको गलेमें डालकर प्रियतम श्रीकृष्णसे मिलनेकेलिये पागलकी तरह उनके पास दौड़ पड़ीं क्योंकि उनका मन श्रीहरिके द्वारा हर लिया गया था । जिन्हें सास ससुरोंने जानेसे रोक दिया, उन्होंने उसी क्षण प्राकृत शरीरको छोड़ दिया और भगवान्‌की लीलामें प्रवेश करने योग्य दिव्य अप्राकृत देहको प्राप्त कर वे प्रियतमसे जा मिलीं ।

भगवान् वेदव्यासने श्रीमद्‌भागवतमें इन गोपियोंका बड़ा ही भावपूर्ण चित्र आंका है—

निशम्य गीतं तदनंगवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ।।

वेगसे चलनेके कारण उनके कानोंके कुण्डल नाच रहे थे । जानेमें वे इतनी वेसुध थीं कि, एक दूसरेको देख न सकीं, देखनेका ध्यान ही नहीं रहा । कामसे हो, क्रोधसे हो, भयसे हो या स्नेहसे हो, जिस किसी प्रकारके सम्बन्धसे भगवान्‌में तन्मयता पाना ही जीवन की चरितार्थता है—

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हिते ।।

भगवान्‌ने इन शुक्लाभिसारिकाओंका 'स्वागतंवो महाभागा' कहकर स्वागत तो किया परन्तु उन्हें तत्काल एक लम्बासा उपदेश दे डाला—इस समय तुम लोग मेरे पास किस

प्रयोजनसे पधारीं ? व्रजमें सब कुशल-मंगल तो है न ? यह रात्रिका समय है। इस वनमें हिंसक प्राणी भरे हुए हैं। अतः तुम सब तुरन्त व्रजको लौट जाओ। रातके समय इस घोर वनमें स्त्रियोंका ठहरना उचित नहीं है। देखो, तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति तुम्हें घरमें न देखकर इधर-उधर ढूंढ़ रहे होंगे। कदाचित तुम सब वनकी शोभा देखने आयी होंगी तो वृन्दावनकी और यमुनाकी इस अपार शोभाको भी देख लिया है। अब देर मत करो। बहुत शीघ्र व्रजको लौट जाओ। घर जाकर अपने-अपने पतियोंकी सेवा करो। देखो तुम्हारे घरके बछड़े और छोटे-छोटे बच्चे रो रहे हैं। जाकर उन्हें दूध पिलाओ तथा बछड़ोंकेलिए गौएं भी दुहो।

भगवान् श्रीकृष्णकी ऐसी बेलौस बातें सुनकर गोपियोंका हृदय दुःखसे भर गया, उनके बिम्बाधर गरम-गरम सांसोंसे सूख गये, उन्होंने अपने मुख नीचेकी ओर लटका लिये और पैरके नखोंसे वे पृथ्वीको कुरेदने लगीं। उनके नेत्रोंसे काजल सने आँसू बह बहकर वक्षःस्थलपर पहुँच गये और वहां लगी हुई केसरको धोने लगे। वे दुःखसे भरी बोलीं—आप परम कोमल स्वभाव होकर भी इस प्रकारके निष्ठुरता भरे वचन क्यों बोल रहे हैं—ऐसा तो आपको नहीं चाहिये। जैसे आदिदेव नारायण संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंका मनोरथ पूरा करते हैं, वैसेही तुम भी हमारे अन्दर जाग्रत हुई तुम्हारी चरण सेवाका वासनाको पूर्ण करके हमें कृतार्थ करो। स्त्रियोंकी तो बात ही क्या, तुम्हारा त्रिभुवन मनमोहन रूप तथा मुरली-संगीत ऐसा मोहक है कि इसे देख-सुनकर पशु-पक्षी, वृक्ष और मृग आदि प्राणी भी परमानन्दसे पुलकित हो गए हैं—

> कास्त्र्यंगते कलपदायतमूर्च्छितेन
> सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
> त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं
> यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥

गोपियोंने अपना हृदय ही उँडेल दिया। उनकी इस प्रकारकी मार्मिक व्यथा और व्याकुलता भरे वचनोंको सुनकर योगेश्वर श्रीकृष्ण 'प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोप्यरीरमत्' अपना स्वरूप भूत आनन्द देने लगे, दिव्य कामरसका आनन्द देने लगे।

अब गोपियोंके मनमें ऐसा प्रमाभिमान आ गया कि पृथ्वी भरकी सभी स्त्रियोंमें हमीं सबसे श्रेष्ठ हैं। अस्तु, भगवान् 'प्रशमाय प्रसादायतत्रैवान्तर्धमित' उनके गर्वको शान्त करने तथा मनको प्रसन्न करनेकेलिए उनके बीच में ही अन्तर्धान हो गये। भगवान्के अकस्मात् अन्तर्धान हो जानेपर उन्हें न देखकर गोपांगनाएं व्याकुल होकर विलाप करने लगीं। उन्मत्तके समान एक वन से दूसरे और दूसरे से तीसरेमें जाकर श्रीहरिका पता लता-वृक्षोंसे पूछने लगीं। इधर भगवान् श्रीकृष्ण और सब गोपियोंको छोड़कर एक गोपीको लेकर एकान्तमें चले आये थे। जिसके सम्बन्धमें 'अनयाऽऽराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः' कहकर

राधाका संकेत है। देखकर आश्चर्य होता है कि श्रीमद्भागवतमें राधाका नामोल्लेख तक नहीं है। वादके ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंमें प्रचुर विकास हुआ है। उस गर्विता गोपांगनाने श्रीकृष्णसे कहा—'प्यारे'! मुझसे अव अधिक चला नहीं जाता, तुम्हारी जहाँ चलनेकी इच्छा हो मुझे कन्धेपर चढ़ाकर ले चलो—'नद मां यत्र ते मनः'। ऐसा सुनकर भगवान्ने उस प्रियतमासे कहा—'अच्छा तुम मेरे कन्धे पर चढ़ लो।' ऐसा सुनकर ज्योंही वह कन्धेपर चढ़नेकेलिए तैयार हुई कि भगवान् तुरन्त अन्तर्धान होगए। तदनन्तर कृष्णचन्द्रके आगमनके लिए अत्यन्त उत्सुक वे समस्त गोपियां फिर यमुनाकी रेतीमें लौट आयीं और परस्पर मिल-जुलकर उन्हींका गुणगान करने लगीं, उनकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। 'गोपीगीत' यहीं से आरम्भ होता है, जिसमें गोपियोंने अधरामृत पिलाकर जीवनदानकी प्रार्थना की है। यदि 'रास पंचाध्यायी' श्रीमद्भागवतका प्राण है तो 'गोपीगीत' रासपंचाध्यायीके प्राणों का प्राण है। श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल वे प्रेममयी गोपियाँ गाने लगीं—हे प्रियतम तुम्हारे प्रकट होनेके कारण इस व्रजका गौरव वैकुण्ठ आदि दिव्य लोकोंसे भी अधिक होगया है तभी तो अखिल सौन्दर्य माधुर्यकी दिव्य मूर्ति श्रीलक्ष्मीजी अपने नित्य निवास वैकुण्ठको छोड़कर इस व्रजको सुशोभित करती हुई यहाँ निरन्तर निवास कर रही हैं। प्यारे! हम तुम्हारी 'अशुल्कदासिका' विना मोलकी दासियाँ हैं। तुमने हमें कालिय नागसे, अघासुरसे, इन्द्रकी वर्षासे, वज्रपातसे, दावानलसे आदि अनेक असुरोंसे बचाया, वार-वार हमारी रक्षा की है, फिर आज तुम्हीं हमें अपनी विरहज्वालासे क्यों भस्म कर रहे हो? हम जानती हैं कि आप निश्चय ही केवल यशोदा मैयाके लाला ही नहीं हैं, अपितु समस्त प्राणियोंकी अन्तरात्माके साक्षी हैं—ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर विश्वकी रक्षाकेलिए यदुकुल में आविर्भूत हुए हैं—

> न खलु गोपिकानन्दनो भवा
> नखिल ;देहिनामन्तरात्मदृक्।
> विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
> सरव उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

हे प्राणेश्वर! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है। वह जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान करती है, बड़े-वड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान तथा साधन किया है—उसके श्रवण कीर्तनसे सव पापोंका नाश होता है। प्यारे! तुम्हारे ध्यानमात्रसे ही परम आनन्द प्राप्त होता है। हमें तो तुमने अपनी मधुर हँसी, प्रेमभरी दृष्टि तथा लीला-विहारका सुख दिया था, एकांतमें प्रेमरसमें पगी लीलाएँ की थीं। अरे छलिया! आज वे ही तुम हम लोगोंसे छिप गये हो। तुम्हारी वे सभी प्रेम भरी बातें इस समय याद आ रही हैं और हमारे मनको क्षुब्ध कर रही हैं। जिस समय तुम गौओंको चराते हुए व्रजसे वनकी ओर जाते हो उस समय यह सोचकर कि तुम्हारे उन मृदु चरणकमलोंमें कुश, कांटे, अंकुर तथा कंकड़ आदि गड़ते होंगे, हम लोगोंके मनमें बड़ी ही व्यथा होती है। संध्याके समय जब तुम

वनसे लौटते हो तब हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखसरोजपर नीली घुँघराली अलकावली छाई हुई है और वह गोधूलिसे धूसरित हो रही है। प्राणेश्वर! तुम्हारे चरण कमल शरणमें आये हुए मनुष्योंके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं ब्रह्माजी उनका नित्य पूजन करते हैं, पृथ्वी के तो वे भूषण ही हैं। प्यारे! अपने उन चरण-सरोजों को हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदय की सारी व्यथाका नाश कर दो। तुम्हारी अधर सुधा दिव्य संभोग रस को बढ़ाने वाली है—बाँसुरी उसका रस सदा पीती रहती है—वह 'इतर राग विस्मारणं नृणां' है—जिसने एक क्षण के लिए एक विन्दु मात्र भी कभी उसका पान कर लिया, उसकी अन्य समस्त आसक्तियां तथा कामनाएं सदा के लिए विस्मृत हो जाती हैं—प्राणनाथ! वह अधर सुधा हम सबको पिलाकर कृतार्थ करो। प्यारे! तुम्हारे चरणकमल अत्यन्त सुकुमार हैं—हम अपने वक्षःस्थल पर भी उन्हें धीरे से रखती हैं कि हमारे कठोर उरोजों से उन कोमल पदकमलों को कहीं चोट न लग जाय। उन्हीं सुकुमार चरणोंसे कुश, कटक, कंकड़ भरे वन-वनमें तुम भटक रहे हो! प्यारे, हमारे जीवनके जीवन तो एक मात्र तुम्हीं हो। गोपियां भाँति-भाँति से प्रलाप करती हुई कृष्ण-दर्शनकी लालसासे फूट-फूट कर रोने लगीं। फिर क्या था—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

कामदेव के मन को मथने वाले भगवान् श्रीकृष्ण पीताम्वर और वनमाला धारण किये, मधुर-मधुर मुसकान की फुलझड़ियाँ छोड़ते हुए उन गोपांगनाओंके आगे प्रकट हुए। प्रियतम को आया देख समस्त व्रजांगनाओंके नेत्र आनन्दसे खिल गये और सबकी सब इस प्रकार खड़ी हो गयीं, जैसे प्राणोंके आ जानेसे शरीर उठ बैठता है। उन्होंने श्रीकृष्णके बैठनेकेलिए अपना कुचकुंकुममण्डित दुकूल बिछा दिया। किसी ने आनंदित हो अपनी अंजलिमें भगवान्का करकमल पकड़ लिया, किसी ने उनकी चंदन-चर्चित भुजा अपने कंधे पर रख ली और किसी ने उनका चबाया हुआ पान अपने हाथ में ले लिया। किसी व्रज बालाने भगवान्को अपने नयनोंके पथसे हृदयमें ले जाकर आँखें मूंद लीं, फिर भीतर ही भीतर आलिंगन करनेसे उसके शरीरमें रोमांच हो आया और वह परमानन्दमें लीन हो गयी।

प्रकट हो होकर छिप जानेमें क्या रहस्य है, इस प्रश्नका श्रीकृष्णने वाक्चातुरी पूर्ण उत्तर देते हुए कहा—प्रेम करनेवाले प्राणियोंकी चित्तवृत्ति निरन्तर मुझमें लगी रहे इसलिए कभी कभी उनसे उदासीन सा हो जाता हूं। जैसे निर्धन मनुष्य को कभी बहुत सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसके हृदयमें खोये हुये धनकी चिन्ता छायी रहती है, वह दूसरी वस्तुका स्मरण ही नहीं करता। इसी प्रकार मैं भी मिल मिल कर छिप जाया करता हूँ जिससे मेरा चिन्तन नित्य निरन्तर बना रहे। मेरे प्रति किये जाने वाले तुम्हारे इस प्रेम का बदला मैं कथमपि चुका नहीं सकता। तुम अपनी साधुता और सौजन्य से ही, चाहो तो, मुझे उऋण कर सकती हो। मैं तो तुम्हारा ऋण चुकाने में सर्वथा असमर्थ हूं।

उन सब गोपियों का मन श्रीकृष्णचन्द्र के मनवाला हो रहा था—उनकी वाणी केवल श्रीकृष्ण की ही चर्चा में लगी हुई थी। उनके शरीर से होनेवाली प्रत्येक चेष्टा केवल श्रीकृष्ण के लिए और श्रीकृष्ण की ही थी। वे श्रीकृष्ण में ही सर्वथा घुलमिल गयी थीं, श्रीकृष्ण के ही गुणों का गान कर रही थीं। वे इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने देह-गेह की भी सुध नहीं थी, फिर घर बार की स्मृति तो होती कैसे? वे सर्वथा बाहर भीतर श्रीकृष्णमय हो रही थीं—भीतर भी तर, बाहर भी तर।

यहीं महारासोत्सव शुरू होता है। दो दो गोपियों के बीच योगेश्वर श्रीकृष्ण उनके गले में हाथ डाल कर खड़े हुए—'योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः - बायें भी कृष्ण दाहिने भी कृष्णके,बाये भी गोपी,दाहिने भी गोपी। रासोत्सव देखनेके लिए उत्सुक देवगण तथा देवांगनाओं के सैकड़ों विमानों से संपूर्ण आकाश भर गया। इधर रासमण्डल में अपने प्रियतम के साथ नृत्य करती हुई गोपांगनाओं के कंगन, पाजेब, और करधनीके घुंघुरुओं की महान् मधुर ध्वनि होने लगीं।

अंगनामंगना अन्तरे माधवो माधवो माधवो चाम्वरे नंगना।
इत्थमाकल्पितं मंडलं सुन्दरं संजगो वेणुना देवकीनन्दनः॥

बीच में राधा और कृष्णकी युगल जोड़ी है। चारों ओर एक महान् मंडल में गोपियां और प्रत्येक गोपी के साथ कृष्ण! सारी प्रकृति रासमय, आनन्दमय, कृष्णमय, मधुमय हो रही है। गोपियों के प्राण कृष्णरसामृत से ओत-प्रोत हैं। नाचते-नाचते सारी सुध बुध खो जाती हैं—

लोचन श्यामरु वचनहिं श्यामरु
श्यामरु चारु निचोल।
श्यामरु हरि हृदयमणि श्यामरु
श्यामरु सखि करु कोल॥

भगवान् की यह दिव्य मनोहारी लीला अपने साथ अपनी ही लीला है। 'रमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रति विम्बविभ्रासः'—जैसे नन्हा सा शिशु दर्पण में पड़े हुए अपने प्रतिविम्ब के साथ खेलता है, वैसे ही श्रीकृष्ण और व्रजसुन्दरियों ने रमण किया। निखिल ब्रह्माण्ड रास के फांस में गुंथा हुआ है। राधा और कृष्ण का केन्द्र में होने का भाव है प्रकृति और पुरुष का सनातन शाश्वत अथच नित्य नवीन संभोग। चारों ओर गोपियाँ रूपी आत्माएं अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके साथ नाच रही हैं। कृष्ण सर्वत्र ओत प्रोत हैं। हमारा हृदय ही वृन्दावन की लीला विहार भूमि है, जिसमें हमारी प्रीति की कालिन्दी के तट पर श्रद्धा की कुंजों के नीचे हमारी राधारूपिणी आत्मा अपने प्राणवल्लभ, जीवनाधार हृदय सर्वस्व श्रीकृष्ण के साथ अनन्त रास में संलग्न है। भगवान् श्रीकृष्ण ही

हमारी आत्मा के आत्मा हैं। आत्माकार वृत्ति ही श्रीराधा है और शेष आत्माभिमुखी वृत्तियाँ हैं। इनका धारा प्रवाह रूप में आत्मरमण ही 'रास' है।

'रास' शब्द का मूल 'रस' है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं—'रसो वै सः'। जिस दिव्य क्रीड़ा में एक ही रस अनेक रसों के रूप में होकर अनन्त रस का समास्वादन करे,एक रसही रससमूहके रूप में प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद,आस्वादक,लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन और उद्दीपनके रूप में क्रीड़ा करे उसका नाम रास है। भगवान् की यह दिव्य लीला भगवान् के दिव्य धाम में दिव्य रूप से निरन्तर हुआ करती है—वही दिव्य लीला दिव्य नित्य वृन्दावन से वन वृन्दावन में और भक्तों के मन वृन्दावन में प्रकट होती है।

इस 'रासपंचाध्यायी' में वंशीध्वनि, गोपियों के अभिसार श्रीकृष्ण के साथ उनकी वातचीत, दिव्य रमण, श्रीराधा के साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियों के दुकूल पर विराजना, गोपियों के कूट प्रश्नका उत्तर, रासनृत्य, क्रीड़ा, जलकेलि और वन विहार का वर्णन है। जो मानवी भाषा में होने पर भी वस्तुतः परम दिव्य है। अप्राकृत लोक में, जहाँ की प्रकृति ही चिन्मय है, यह रास वस्तुतः परमोज्वल रस का एक दिव्य मंगलमय आनन्दमय रसमय प्रकाश है। भगवान् के समान ही गोपियाँ भी परम रसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। उनकी दृष्टि में केवल चिदानंद स्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदय में श्रीकृष्ण को तृप्त करनेवाला प्रेमामृत है। ब्रह्मा, शंकर, उद्धव और अर्जुन ने गोपियों की चरणरेणु की याचना की है।

भगवान् का चिदानंद घन शरीर दिव्य है। वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादान रहित है। वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है। इसी प्रकार गोपियाँ दिव्य जगत् की, भगवान् की स्वरूपभूता अंतरंग शक्तियाँ हैं। इन दोनों का संबंध भी दिव्य ही है। भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया ने रासलीलाकेलिए दिव्य स्थल, दिव्य संगीत, दिव्य मन आदि का निर्माण किया है। भगवान् की बांसुरी जड़ को चेतन, चेतन को जड़, चल को अचल, अचल को चल, विक्षिप्त को समाधिस्थ और समाधिस्थ को विक्षिप्त कर देती है। इस प्रेमसाधना में जगत्के सारे संबंध और मर्यादाएँ वैसे ही छूट जाती हैं, जैसे नदी के पार पहुँचने पर नौका की सवारी छूट जाती है। देवर्षि नारद का एक सूत्र है—

'वेदानपि संपसति, केवलं अविच्छिन्नानुरागं लभते' जो वेदमूलक समस्त धर्ममर्यादाओं का भी भली भाँति त्याग कर देता है, वह अखण्ड,असीम भगवत्प्रीति को प्राप्त करता है। परानुरक्ति की यही परिभाषा है। इस प्रेम का उदाहरण भी देवर्षि नारद अपने सूत्र में देते हैं—'यथा व्रजगोपिकानाम्'—अर्थात् इस प्रेम की नित्य सिद्धि गोपियों की थी। अतएव यह रास है चिदानंदमय भगवान् का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाम में सर्वदा होते रहने पर भी कभी कभी प्रकट होता है।

फल श्रुति में श्रीशुकदेवजी ने स्पष्ट कहा है:—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

अर्थात् व्रजवंधुओंके साथ भगवान्‌की इस रासक्रीड़ाका जो अनुशीलन करता है, श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करेगा, वह शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्णकी पराभक्तिको—सर्वश्रेष्ठ प्रेमस्वरूपा भक्ति को प्राप्त हो जायगा तथा तुरंत हृदयके विकाररूप लौकिक अलौकिक काम से सर्वथा मुक्त हो जायगा। ऐसी है दिव्य रसमयी यह रासलीला और ऐसा मंगलमय है इसका अनुशीलन।

जयति जगन्मंगलं हरेर्नाम

हम उस भगवान्‌की स्तुति करें, जिसने यह सारी सृष्टि उत्पन्न की है।

हे प्रभो ! मरनेवाले हम मनुष्य लोग आपके अमर नामका कीर्तन करते हैं अर्थात् आपके नाम—कीर्तनका ही पुनः पुनः अभ्यास करते हैं।

भगवान्‌के गुण, कर्म और नामोंका स्वयं उच्चारण संकीर्तन है।

जिस भगवान्‌की महिमाको ये हिमालय आदि पर्वत और नदियोंके साथ समुद्र कहते-गाते हैं और जिस परमात्माकी ये सब दिशायें महिमा कहती हैं, हम सब उस सुख-स्वरूप परमात्माकी स्तुतिपूर्वक विशेष भक्ति करें।

अहो ! जिसकी जिह्वा पर तुम्हारा पवित्र नाम रहता हैं, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है, क्योंकि जो तुम्हारे नामका कीर्तन करते हैं, उन श्रेष्ठ पुरुषों ने तप, यज्ञ, तीर्थ स्नान और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया। अर्थात् नाम—कीर्तनसे तप आदि गतार्थ हो जाते हैं।

विद्वानोंने अपने अनुभव से यही निश्चय किया है कि भगवान् का गुण कीर्तनही तप, वेदाध्ययन, उत्तम यज्ञ, मंत्रज्ञान और दान आदि का अविनाशी फल है। पढ़ने-लिखने का फल भी भगवन्नाम कीर्तन ही है।

बुद्धिमान कलियुग की प्रशंसा करते हैं कि इस युग में संकीर्तन से ही सब स्वार्थ सिद्धि हो जाती है, जिससे बढ़ कर देह धारियोंका अन्य लाभ नहीं है, संसार का नाश होता है और परम शान्तिकी प्राप्ति होती है।

सत्ययुग में ध्यान से, त्रेता युग में यज्ञ करने से तथा द्वापर में भगवान् की पूजा से जो कुछ फल प्राप्त होता है, वह सब कलियुग में भगवान् के नाम कीर्तन मात्रसे ही प्राप्त होता है।

gीता-दर्शन का सार-चित्र

"भगवत्प्राप्तिका अर्थ है अनासक्ति। जीव जब अपने संपूर्ण कर्मोंको 'स्व' से तटस्थ होकर दूसरोंके लिए ही करने लगता है, तब यह समझना चाहिए कि उसे भगवत्प्राप्ति हो गई है। इसी को जीवनकी 'पूर्णावस्था' और 'सिद्धावस्था' भी कहते हैं।"

गीता का मूल मंत्र-अनासक्ति

श्रीगुरुदेवत्रिपाठी

भागवत ऐश्वर्यसत्, चित् और आनन्द तत्वोंका समग्ररूप है। एककी प्राप्तिसे तीनोंकी प्राप्ति एकत्र सम्भव है, कारण कि प्रत्येक अन्योन्याश्रित हैं। क्रमशः इन तीनों तत्वोंकी प्राप्तिके तीन विहित मार्ग भी हैं। सत् तत्व ज्ञानयोग द्वारा, चित् तत्व कर्मयोग द्वारा और आनन्द तत्व भक्तियोग द्वारा प्राप्य हैं। गीता शास्त्रमें इन्हीं तीनों योगोंका विस्तृत वर्णन है।

ज्ञान,भक्ति,और कर्मयोगका संबंधभी अन्योन्याश्रय है। भक्ति शास्त्रके महान् आचार्य की भक्तिका स्वरूप कर्म और भक्ति मिश्रित है। वे कहते हैं-तदर्पिताखिलाचारिता तद् विस्मरणे परम् व्याकुलता अर्थात् अखिल कर्मोंका अर्पण कर्मयोग और परम व्याकुलता भक्ति योग है। गीता कहती है—एकंसाख्यं च योगं च यःपश्यति स पश्यति अर्थात् सांख्य अर्थात् ज्ञानयोग और कर्मयोग एक हैं यह सत्य दृष्टि है। अतः यह स्पष्ट हो गया कि कर्म, भक्ति और ज्ञान एक दूसरे में अन्तर्भुक्त हैं।

गीताशास्त्रका केन्द्रीभूत विचार अनासक्ति है और इस अनासक्तिके साधन हैं कर्म, भक्ति और ज्ञानयोग। संयोग ऐसा है कि गीताकारोंका भी एक त्रिगुट है और वे तीनों भी अनासक्त हैं—पूर्ण अनासक्त। गीता के श्रष्टा हैं—महर्षि वेदव्यास, द्रष्टा हैं—संजय और कर्ता (वक्ता अथवा गायक) हैं श्रीकृष्ण।

विमूढ़ आत्मा द्वारा अहंकारवश कर्तापनकी प्रतीति ही आसक्ति है—और यह प्रतीति मिथ्याज्ञानजन्य है-ऐसा गीताकारका मत है, कभी कभी आसक्ति और प्रेम को

समानार्थी मान लेनेका भ्रम भी हो जाता है, लेकिन दोनोंमें महान् अन्तर है। आसक्ति बन्धन रूपा है और प्रेम मोक्षरूप। विशुद्ध प्रेम विकसित करता है। आसक्ति धीरे धीरे आती है। इन्द्रियोंद्वारा रस ग्रहणके उपरान्त मन उसमें क्रमशः लीन होना प्रारम्भ कर देता है और फिर वही लीनता आसक्ति बन जाती है।

अनासक्ति भी अभ्यासजन्य है और धीरे-धीरे प्राप्त होती है। अनासक्तिकी प्राप्ति निवृत्ति अथवा प्रवृत्ति दोनों मार्गोंद्वारा सम्भव है। निवृत्तिमार्ग हठका मार्ग है। बलात् चित्तको विषयोंसे उपराम करनेकी यह प्रक्रिया कठिन है, प्रवृत्ति मार्गके अन्तर्गत हम भक्तिको भी ले सकते हैं। भक्त अपनी जगदासक्तिको परमेश्वरासक्तिमें परिणत कर देता है। वह विषयोंको बलात् शमित नहीं करता, बल्कि उनको मार्गान्तरीकरण कर देता है। प्रवृतिका दूसरा रूप यह भी है कि इन्द्रियोंको विषयोंमें इतना आसक्त कर दिया जाय कि अति-शयता के कारण ही चित्त विषयोंसे उपरत हो जाये। सिद्ध तिलोपा ने कहा है :—

जिमि विस भक्खइ विसहिं पलुता।
तिमि भव भुंजइ भवहिं ण जुता॥

अर्थात् जिस प्रकार विष खाते रहनेसे धीरे-धीरे विषका प्रभाव नष्ट हो जाता है, वैसे ही संसारको निरन्तर भोग करनेसे संसार लिप्त नहीं होता।

आसक्तिका त्याग और अनासक्तिकी प्राप्ति यह गीताकारका लक्ष्य है। अतः इसके पूर्व यह विचार करना भी समीचीन होगा कि आसक्तिके कितने रूप हैं। मोटे तौरपर वस्तु-आसक्ति, भाव-आसक्ति और विचार-आसक्तिके रूपमें आसक्तिके तीन रूप मान सकते हैं। जगत्के स्थूलपदार्थोंकी कामना वस्तुआसक्ति है। मधुर और प्रिय सम्बन्धकी कामना भावा-सक्ति और महत्ताकी कामना ही विचारासक्ति है और क्रमशः कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगके द्वारा इनका शमन सम्भव है। भावासक्तिको गोस्वामीजीने भवरसकी संज्ञा दी है और राम भक्तिके द्वारा उसपर विजय प्राप्त करनेका मार्ग बताया है—

"अवसि होहि भवरस विरति"

तेरहवें अध्यायके नवें श्लोकमें गीताकारने आसक्ति, अनभिष्वंग, और समचित्वका प्रयोग करके कर्म, भक्ति और ज्ञान मार्गकी प्रक्रिया पर एकत्र प्रकाश डाल दिया है। कर्म मार्गीको आसक्तिकी सिद्धि आवश्यक है। कर्ममार्गी मूलतः सेवाव्रती होता है, स्वार्थको परार्थमय करके वह कार्य करता है। अतः उसे फलासक्ति नहीं होती और आसक्ति न हो, इसलिए ही आसक्त होना पड़ता है। भक्तिका सम्बन्ध हृदयसे है, जगत्के प्रति जो राग है उसे ही चैतन्यके प्रति कर देना भक्तिकी प्रक्रिया है। भक्तको नितांत ममता रहित होकर विचरण करना चाहिए। यह भक्तिकी कुन्जी है और यही अनभिष्वंगका अर्थ है। समस्त प्राणिमात्रके प्रति समत्वकी भावनाका रहना, यह चिन्तनका कार्य है और ज्ञान मार्गका कार्य इसी चिन्तन प्रक्रियाको व्यवस्थित करना है। जब तक व्यक्ति क्षुद्र अहंकी सीमामें आबद्ध है,तबतक उसका

उद्धार सम्भव नहीं, "नाल्पे सुख मस्तु भूमा वै सुखम्" के अनुसार उसे अपने अल्प अहंका विसर्जन भूमामें तो करना ही है और संक्षेपमें यही कर्म, भक्ति, ज्ञान द्वारा अनासक्ति प्राप्ति की प्रक्रिया है।

कर्ममार्गी लोक संग्रही होता है। अतः उसे गत संगी होना आवश्यक है, ऐसा गीता-कारने यज्ञ-चर्चा करते हुए चौथे अध्यायके तेईसवें श्लोकमें कहा है, लेकिन उसके पूर्व उसे निर्मम और निस्पृह होना भी आवश्यक है। इसे वह इसके पूर्व स्वीकार कर चुका है अर्थात् गत संग होनेके पूर्वकी भूमिका है निर्ममता और निस्पृहता। गतसग होनेकी प्रक्रिया श्रम साध्य है, लेकिन धीरे-धीरे यह स्थिति सहज हो जाती है और इस अवस्थाको प्राप्त करके कर्म योगी "मुक्त संग" हो जाता है। तव वह अव्यय पदका अधिकारी भी हो जाता है।

भक्तिका मार्ग सहज और कठिन दोनों है। दशम् अध्यायके नवें श्लोकमें भगवान्ने भक्तिका स्वरूप अत्यन्त स्पष्टताके साथ वर्णित किया है। भागवत चरित्र स्मरण, भगवान्में चित्तका प्रेमपूर्वक रमण ही भक्ति है। जव चित्तके रमणका विषय भागवत्-चरित्र हो जाएगा, जव आसक्ति भगवान्के प्रति हो जायगी, तो सहज ही जगत्से विमुखता अथवा अनासक्ति सध जायगी।

ज्ञानमार्ग ज्ञानियोंके लिए है। क्रमशः अभ्यासपूर्वक चित्तको संसारसे साधकको हटाना पड़ता है। गीतामें इसकी अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया दी गई है। जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम् अर्थात् जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोगादि दुखोंका चिन्तन करनेसे जगत् की निःसारता और अनित्यताका वोध होता है और जगदासक्ति क्षीण होती है। भगवान् बुद्धने भी मरणानुस्मृति और कायगतानुस्मृति आदि अभ्यासोंके द्वारा जगत्से अना-सक्त होनेकी प्रक्रिया वतायी है। इसे ही बौद्ध विपश्यना कहते हैं, फिर ध्यानाभ्यासका भी गीतामें विधान है, जिसके द्वारा पूर्णता प्राप्त हो सकती है।

कुल मिलाकर निष्कर्ष यह निकला कि अनासक्ति साध्य है और ज्ञान, भक्ति उसके साधन हैं, अनासक्तिकी प्राप्ति ही परमेश्वरकी प्राप्ति है। कारण कि परमेश्वरका स्वरूप भी अनासक्त है। तभी उन्हें शान्ताकारं भुजगशयनम् कहते हैं, अर्थात् भुजगशयन करने के पश्चात् शान्तिकी स्थिति अनासक्तकी स्थिति है।

०—०—०

प्रकाश-पथ

तुझे जीवों पर दया करनी चाहिए—यह बात अच्छी है, पर तू यदि अपनी दयाका गुलाम हो तो यह बात अच्छी नहीं। भगवान्के अतिरिक्त तू और किसीका गुलाम मत बन, यहाँ तक कि भगवान्के अतिरिक्त अत्यंत ज्योतिर्मय दूतोंका भी नहीं।

—०—

श्रीकृष्ण भगवान्‌की वंशीका मनोहारी शब्द-चित्र

श्रीकृष्ण भगवान्‌के एक हाथमें चक्र, दूसरेमें वंशी–शक्ति और माधुर्यका अपूर्व संगम। ऐसा अपूर्व संगम जगत्‌में क्या और कहीं मिलेगा? 'चक्र' ने धर्मकी संस्थापना की, वंशीने प्राण-प्राणको मधु-सिक्त कर दिया।

श्याम-कर मुरली अतिही विराजत

डा० श्रीहरिनन्दन पाण्डेय

जिस भाँति योगिराज भगवान् श्रीकृष्णके स्मर करते ही बरबस उनके कर-कमलों में सदैव विराजनेवाली बाँसुरी याद आ जाती है, उसी प्रकार बाँसुरीका उच्चारण करते ही लीलाधरकी पाप-ताप-हारिणी, मनमोहिनी मूर्ति नाच उठती है। उसे हम यों भी कह सकते हैं कि, जहाँ वासुदेव हैं, वहीं वंशीभी है। यही कारण है कि ब्रज एवं हिन्दी वाङ्मयमें वंशीका पर्याप्त काव्याभिनन्दन किया गया है। कदाचित् ही कोई ऐसा कवि होगा, जिसने कन्हैयाके चारु-चरित्रका चित्रण करते हुए, उनकी वंशीकी उपेक्षा की होगी। उस बाँसकी बाँसुरीकी प्रशंसामें महाकवि विहारीलालने लिखा है:—'अधर धरत हरिके परत, दीठ, पीत पट जोति। हरित बाँसकी बाँसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति।' इस डेढ़ बीतेकी बाँसुरीने क्या-क्या न कर दिखाया? यशोदानन्दन जब इस नन्ही-सी बाँसुरीको अपने अधरोंपर रखकर स्वर-सृजन करने लगते हैं, तो धरती पर स्वर्ग उतर आता है। और, तो और जब वह वंशी-बादन करता हुआ, नैन सैन भी करने लगता है, तो सारे वृन्दावनमें आनन्द चूने लगता है, मस्ती बरसने लगती है। इसीको भक्त प्रवर सूरदासने इस भाँति शब्द-बद्ध किया है:—

श्याम-कर मुरली अति ही विराजत।
परसत अधर सुधारस प्रकटत
मधुर - मधुर सुर बाजत।
लटकत मुकुट भौंह छवि मटकत
नैन सैन अति छाजत॥

यही नहीं जब वह मनमोहन 'ग्रीव नवाइ' वंशी पर मटकि वृन्दावनमें घूमता है, तो कन्हैयाके उस कालका स्वरूप कोटि-कोटि कामदेवोंको भी लज्जित कर देता है। यथा—

ग्रीव नवाइ मटकि बंशी पर
कोटि मदन छबि छाजत।'

बाँसुरीके स्वरोंमें कितनी शक्ति सन्निहित है ? अपार, अतुल, अद्वितीय। तभी तो इसके मादक स्वरोंपर चर-अचर सभी विमुग्ध हो उठते हैं। गोपिकाएं वंशीके स्वरोंको सुनते ही उन्मादित हो उठती हैं और यह भी नही सोचतीं कि लोक-लज्जा क्या है। दिन है या रात, बस-

चली बन वेनु सुनत जब धाई।
मातु--पिता बांधव इक त्रासत
जाति कहां अकुलाई॥
सकुच नहीं सकाहू नाहिं
राति कहां तुम जाति।
जननि कहति दई की घाली
काहे को इतराति।
मानत नाहिं और रिस पावति
निकसी नातो तोरि।

पता नहीं, श्यामकी इस बाँसुरीने ब्रज वनिताओंको क्या-क्या करके नहीं छोड़ा ?

कितिन गोकुल कुल बधू
काहि न केहि सुख दीन,
कौने तजि न कुल गलो
दैव मुरली सुर लीन॥

हम ऊपर लिख आये हैं कि लीलाधरकी इस लीलामयी बांसुरीमें अपार शक्ति सन्निहित है। तभी तो वंशी-स्वरको सुन कर हँसता हुआ रोने लगता है, रोता हुआ हँसने लगता है। नीरस हृदयमें अपार रस की सरिता प्रवाहित होने लगती है। वंशीमें करुणा-सागर संभूत करनेकी भी क्षमता है, और आनन्द की भी। सारांश यह है कि इसकी शक्ति अजेय है, अनन्त है। यही कारण है कि वंशी-रवको सुन कर हवा-पानी, लता-द्रुम, खग-मृग सभी अपनेको भूल जाते हैं। महात्मा सूरदास कहते हैं:—

यमुना नीर प्रवाह थकित भयो,
पवन रह्यो मुरझाई।
खग-मृग मौन अधीन भये सब

अपनी गति बिसराई।
द्रुम वेली अनुराग पुलक तन
ससि थक्यौ निसि न घटाई।

यही नहीं, बाँसुरी के प्रभाव से—

मुरली सुनत अचल चले।
थके चर, जल झरत पाहन
विफल वृक्षहु फले।

कवि आगे लिखता है:—

पय स्रवत गोधननि थन तें
प्रेम पुलकित गात।
और झरे द्रुम अंकुरित पल्लव
विटप चञ्चल पात।
सुनत खग मृग मौन साध्यौ
पिय की अनुहारि।

इसी भाँति सहस्रों कवियोंने बाँसुरीकी प्रशस्तिमें अनगिनत सुन्दर रचनाएं की हैं। एक रचनाका रसास्वादन करें—

मुरली गति विपरीत कराई।
तिहूँ भुवन भरि नाद समान्यौ, राधा-रमन बजाई।
बछड़ा थन नाहीं मुख परसत, चरत नहिं तृन धेनु,
जमुन उलटी धार बहि चलि, पवन थकित सुनि वेनु।

मुरलीधरकी मुरलीकी शक्तिकी यह परम सीमा है। एक ओर आनन्दकन्दकी इस मुरलीके मादक स्वरसे देव-दनुज विमोहित हो उठते हैं, वहीं दूसरी ओर ब्रज-बनिताओं के हृदयोंमें ईर्ष्या उत्पन्न करती है। तभी वह ईर्ष्याके वशीभूत हो दृढ़ प्रतिज्ञा कर बैठती हैं कि—

"हम ब्रज बसिहैं तो बाँसुरी न बसै यह,
बाँसुरी बसाय कान्ह, हमें बिदा दीजिये।"

फिर भी ब्रज-वल्लभ बाँसुरीका परित्याग नहीं करते। तभी गोपियाँ खीझ कर उलाहना देने लगती हैं :—

जेते सुर लीने उर तेते छेद कीने और
जेते राग, तेते दाग रोम-रोम छीजिये।
ताननि के तीखे जनु बाननि चलाई देत,
चीर-चीर अंगन तुनीर तनु कीजिये।

यहाँ एक प्रसंग याद आजाता है। एक दिन एक गोपीने नीलसुन्दरके कर-कमलोंमें पड़ी हुई बाँसुरीको आक्रोशसे उपालंभ दिया—

अधर सेज, नासा बिजन, स्वर मिलो चरन दबाय।
अरी सुहागिनी मुरलिया, लियो श्याम बिरमाय।।

नीलसुन्दरने एक माधुर्य मिश्रित मुस्कानसे बांसुरीकी ओर देखा। चिन्मयी बाँसुरी ने प्यारेका संकेत पाकर उस ईर्ष्यालुगोपीसे निवेदन किया—

'अन्तर की सरबस तजी, कुल तजि तनहि जराय।
सौंपि निजहि प्रभु कर भई, सदा सुहागिनि माय।।

बाँसुरीके रस विनय उत्तरमें यह भाव सन्निहित है कि अपनेको सर्वथा 'निःस्व' बना कर उस परम प्रेमास्पद प्रभु पर न्योछावर कर देना ही वास्तविक भक्ति है। इन्ही कारणों से बांसकी बाँसुरीको लीलाधरके कर-कमलों और अघरों पर आसीन होनेका गौरव प्राप्त है। कविवर स्व० "हरिऔध" जी जिज्ञासा करते हैं—

मुरलिके! कह क्यों तव नाद से
विकल हो उठतीं बहु बाम हैं?
किसलिए बनतीं अति व्यस्त हैं,
अकुलाती, हँसतीं, मृदु बोलतीं।।

कवि स्वयं अपनी शंकाका समाधान कर लेता है। वह समझता है कि यह पूर्वजन्म की तपस्याका ही फल है कि वंशीको इतना सम्मान प्राप्त है। यथा—

किस तपोबल से, किस काल में
सच बता मुरली कल नादिनी?
अवनि में तुझको इतनी मिली
मधुरता, मृदुता, मनहारिता।
निरख व्यापकता प्रति पत्ति की
कथन क्यों न करूँ अयि वंशि के।
विदित है तव अपार अनूपमे
सफलता, फलता, अनुकूलता।

लीलाधरकी लीलामयी वंशीकी ऐन्द्रजालिक शक्तिको देख कवि पुनः जिज्ञासा करता है—

स्वर फूँका है तव किस मंत्र से
सुन जिसे परमाकुल मत्त हो।

सरन है तजतीं बहु बालिका,
उमँगती पगती, अनुरागिनी।
तप प्रबंचित हैं पन छानतीं
विवस सी कितनी व्रज-गोपिका।
युग विलोचन से जल मोचतीं
ललकतीं, कंपतीं अवलोकतीं।

विरहासक्ति जब चरम सीमाको पार कर जाती है,तो धैर्यका भी धैर्य छूट जाता है। उस शरद-पूर्णिमाको जब कालिन्दीके कूल पर नटवरने बाँसुरी बजायी थी, ऐसी कौन व्रज-वनिता थी जो स्वजन-परिजनोंके लाख कहने पर भी रुकी हो? यह है प्रेमाधीरता। श्री 'मधुप' के शब्दोंमें सुनिये:—

श्री व्रज-रत्न प्राणधन हरि को, चल सखि! चलें, देखें सत्वर।
हैं कदम्ब के तले नाचते, वेणु बजाते राधा वर॥
घनश्याम की ध्वनि सुन कर मैं चातकी धैर्य धारूँ?
क्यों न प्राण-प्यारे के ऊपर अपना तन-मन-धन वारूँ?

इस भाँति हमने अति संक्षेपमें कृष्णकी बाँसुरीके महत्व, उसके त्याग, बलिदान और उपलब्धियोंपर प्रकाश डाला है। कहना न होगा कि भारतीय वाङ्मयमें जिसप्रकार योगीश्वर श्रीकृष्णका पावन चरित्र अजर-अमर है, उसी भाँति बाँसुरीको भी शाश्वत स्थान प्राप्त है। सारांश यह है कि जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ वंशी है; और जहाँ वंशी है, वही नन्द-नन्दन विराजमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनोंमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, जिसे कोई भी भंग नहीं कर सकता। यह वंशीका सौभाग्य है कि भगवान् श्रीकृष्णकी संगिनी बनी हुई है। यही नहीं, बाँसुरी दिन-रात प्रार्थना करती रहती है कि सलौने श्याम से वह एक क्षणके लिये भी अलग न हो। बस, वंशीकी एक ही तमन्ना है, एक ही अरमान है—

"निकल जायें दम तेरे कदमों के नीचे,
यही दिलकी हसरत, यही आरजू है।"

करुणामयसे

नरहरि! चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी॥
तू मोहि देखै, मैं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखै, तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई॥
सब घट अन्तर, रमै निरन्तर, मैं देखत नहिं जाना।
गुन सब तोर, मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सौं कैसे करि निस्तारा।
कह 'रैदास' कृष्ण करुनामय जै जै जग आधारा॥

मानवके एक जटिल प्रश्नका उत्तर—
एक निगूढ़ समस्याका विचारपूर्ण समाधान

"शरीर और आत्मा दोनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। पर शरीर तो नश्वर-क्षण-क्षण पर छीजनेवाला और आत्मा अविनश्वर—अखण्ड ! दोनोंके संयोगसे ही चलता है यह जीवन व्यापार ! दोनों विपरीत धर्मा, फिर कैसे चले जीवन-व्यापार ! यह एक प्रश्न है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण ने मानवके इसी प्रश्नका उत्तर दिया है—सद्धर्म पालन, सतत् सत्कर्म चिन्तन।"

प्रत्येक क्षण

श्रीपरिपूर्णानन्द वर्मा

कोई नहीं जानता कि दूसरे क्षण क्या होगा? मनुष्य कार्यक्रम बनाता है, वर्षोंकी सोचकर योजना बनाता है, और मृत्यु उसके पीठ पीछे खड़ी मुस्कराती रहती है, उस व्यक्ति के अज्ञान पर, उसकी मूर्खता पर।

कानपुरके एक मित्र ने कहा—"पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवालने मुझसे कहा था कि मैं १५ या १६ जून तक आऊंगा तब बातें करेंगे, मैं नहीं जानता था कि वे आवेंगे, पर उनका पार्थिव शरीर नहीं", उनकी अस्थि गंगा प्रवाहके लिए १५ जून को कानपुर आई थी।

लखनऊके एक डाक्टर ने कहा कि—"८ जून, ६८, शनिवारको दिनमें छः मिनट तक काशी विद्यापीठ के रजिष्ट्रार डा० विजयशंकर हेकडवाल ने मुझसे टेलीफोन से बातकी और कहा कि कल रविवारको तुमसे मिलूंगा। मैं नहीं जानता था कि उसी रात में उनकी हृदयकी गति बन्द हो जाने से मृत्यु हो जायगी और मैं उनके निर्जीव शरीर से मिलूंगा।"

वाराणसीके विद्वान् तथा सन्त मित्र सरदार सत्यदेवनारायणसिंहने मुझसे कहा—"तीन चार दिन में पत्र भेजूंगा।" पत्र मिला—उनकी मृत्युका समाचार देनेकेलिए।

अतएव जब जीवन इतना अनिश्चित है, तब हम सामनेवाले प्रत्येक क्षणकी चिन्ता न कर दूर की, आगेकी क्यों सोचते हैं?

ज्योतिषी ने जन्म कुण्डली देखकर मरनेकी तारीख तय करदी हो, पर बिरली ही ऐसी तारीख सही निकलती है। डंका पीट-पीटकर मृत्युञ्जयका जप करने से भी मृत्यु की

निश्चित तिथि नहीं टल सकती । तब यह मूर्ख मानव अपनेको धोखेमें क्यों रखता है ।

प्रतिक्षण चैतन्य

सुसान नामक एक लेखिका ने अपने उपन्यासमें एक पात्रके मुखसे मूल्यवान बात कहलायी है—

"हां, एक चीज मुझे चाहिये । मैं चाहता हूं कि मैं अपने जीवनके प्रत्येक मिनट तथा सैकण्डके प्रति चैतन्य रहूँ और उनमें से प्रत्येक का उपयोग करलूँ"। लेकिन क्या हम करते हैं ? यदि जीवनके २४ घण्टेमें से ८ सोने में निकल गये, चार घण्टे नहाने, ४ घण्टे खाने आदि में चले गये तो शेष ८ घण्टे की ही क्रियाशील जिन्दगी रह गयी । यानी पचास वर्षकी उम्र में से केवल १७ वर्षही तो कामके बचे ।

१७ वर्षकी जिन्दगीमें कितना कामहो सकता है ? यदि हमने प्रत्येक क्षणका सदुपयोग नहीं किया, यदि दुरुपयोग किया, तो कौन जाने मनुष्यका यह चोला मिलेगा भी या नहीं ?

धर्मशास्त्र कहता है कि—

अजरामरवत् प्राज्ञो
विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीतमिव केशेषु
मृत्युणा धर्ममाचरेत् ।

—आदमी अपनेको अजर और अमर समझकर विद्या तथा अर्थका संग्रह करे । पर यह समझकर कि मौत केश पकड़े खड़ी है, प्रत्येक क्षण धर्मका आचरण करे ।

मृत्यु निश्चित्

मौत तो निश्चित् है । इससे कोई बच नहीं सकता । १००० वर्ष पूर्व चीनके एक राजाने अपने पुरोहित से अमर होने का उपाय पूछा । सलाह मिली कि एक लाख नवजात शिशुओंको पानीमें डुबाकर बलिकी जाय तो राजा अमर हो जाँयगे । यही किया गया । एक लाख निरीह बच्चे पानीमें डुबा दिये गये । संख्या पूरी होनेके सात दिन बाद राजाको ज्वर चढ़ा, सातदिनकी बीमारीमें वे मर गये । अमर होकर शरीरधारीको सुखभी नहीं मिल सकता, जब शरीरके अंग-अंग शिथिल होकर नष्ट हो जांयगे तो यह "जीवन" लेकर क्या होगा ? समुद्रमंथन के समय अमृत पात्रकी एक बूंद चोरी से पी लेने वाले गृद्ध आज तक तड़प-तड़प कर भगवान् विष्णुसे मृत्युकी याचना कर रहे हैं । इसीलिए कहा है—

क्षणं प्रज्वलितो श्रेयो
न धूमायति चिरम्....

वह आग अच्छी है जो चाहे क्षण भर जले, पर भभक कर जले, सांय-सांय करके बहुत देर तक जलने वाली आग निरर्थक है ।

गुरु नानक ने कहा था—

जो आइया सो चलसी
सभु कोई आई बारीये।

बारी-बारी से सभी चले जांयगे और अपने भले-बुरेका फल अपनेकोही भोगना होगा—

मन्दा-चंगा आपणा
आपेही कीता पावणा।

और मरनेके बाद, दो आँसू बहानेके बाद, श्राद्ध होगा, भोजन होगा, लोग भूल जाँयगे। अकबर शायर ने लिखा था—

बतावें आपको मरनेके बाद क्या होगा?
पुलाव खांयगे अहबाब, फातिहा होगा....

तब फिर इस चार दिनके जीवनमें हमने प्रत्येक क्षणका किस प्रकार उपयोग किया, क्या यह जरूरी तथा महत्वकी चिन्ता नहीं है? हम अपने जीवनका प्रत्येक क्षण दूसरेको हानि पहुँचानेमें बिताते हैं, अब वह समयभी चला गया, जब जीवनके संघर्षके कुछ मौलिक सिद्धान्त याद रखे जाते थे। देवीभागवतके प्रथम स्कंधमें ९वें अध्यायका २६ वाँ श्लोक है—भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ से कहा था—

श्रान्ते भीते त्यक्त शस्त्रे
पतिते बालके तथा
प्रहरन्ति न वीरास्ते
धर्म एष सनातनः।

थका हुआ, डरा हुआ, हथियार छोड़ देनेवाला, गिरपड़ा व्यक्ति तथा बालकपर वीर लोग हाथ नहीं छोड़ते, पर हम प्रतिक्षण हर दुर्बल पर आघात करते रहते हैं।

प्रति क्षण क्या करें?

प्रश्न हो सकता है कि प्रत्येक क्षणका अर्थ क्या होगा? यह हिसाब कौन लगाता फिरे कि हर क्षणमें क्या कर रहे हैं, किन्तु यह भूल है। प्रतिक्षणका हिसाब लगानेको कोई नहीं कहता। केवल इतनाही करना है कि जितनेभी जागते हुए क्षण हैं, उनका सदुपयोग हो यानी उनके कुछ मूलभूत सिद्धान्त सदैव सामने रहें। मरनेके बाद क्या होगा, इसकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। मनुष्य धर्मके सभी कार्योंमें, क्रियाओंमें पड़े अथवा न पड़े, उसे केवल इतनाही ध्यान रखना चाहिये कि भगवान्के चरणोंमें अपनेको अर्पण कर देनेके बाद उसका प्रत्येक कार्य तथा उसका फल भगवान्के जिम्मे है। गीतामें भगवान्ने स्वयं ऐसे व्यक्तिकेलिए, ऐसे भक्तकेलिये कहा है कि—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात् ।

मैं ऐसे भक्तका मृत्यु-संसारके सागरसे उद्धार करता हूँ । अतएव धर्मके विषयमें यदि हम केवल कृष्णार्पण बुद्धि से ही काम लें तो बहुत है और ऐसी बुद्धि से काम लेनेवाला कहता है कि—

यद्-यद् कर्म करोमि
तत्-तत् तव आवाहनम्···

मैं जो भी कर्म करता हूँ, वह तेरा आवाहन ही है । यह बड़े आत्मविश्वास तथा बड़ी आस्थाकी चीज है ।

जिसने अपने समूचे कर्मको भगवान्‌का आवाहन मान लिया, वह निन्दनीय कर्म करने पर उतारू होते हुये भी हिचकेगा । उसका मन उसे धिक्कारेगा कि "इस कर्मके द्वारा उसका आवाहन मत करो ।"

ऐसा करने वाला व्यक्तिही आदि शंकराचार्यके शब्दों में—

"वसन्तवल्लोक हितं चरन्ति ।"

जिस प्रकार वसन्त ऋतु सबके लिए सुखदायिनी होती है, उसीप्रकार हमारे कर्मभी सबके लिए सुखदायक होंगे ।

क्षणके सदुपयोगकेलिये जड़वत् निष्क्रिय आचरणकी भी अपेक्षा नहीं है । जड़ तो परमब्रह्म है । न कर्त्ता है, न अकर्त्ता है । उसमें विलीन होनेकेलिये जितनी साधना तथा तपश्चर्या चाहिये, वह सबमें प्राप्य नहीं है, सम्भव नहीं है । परमब्रह्म जड़ है, इसलिये उसकी नपुंसक संज्ञा भी है, किन्तु महाशक्तिके संयोगसे उसमें पौरुष प्राप्तहो गया है और वही पौरुष समूचे संसारका कारणभूत तत्व है, वही महाशक्ति इसमें भी है—

नपुंसकमिदं नाथ परब्रह्म फलेत् कियत् ।
तत्पौरुष नियोक्ती चे देवत्वच्छक्ति सुन्दरी ।।

पौरुष

उस पौरुषका-महान् शक्तिका हम अपने जीवनके प्रत्येक क्षणमें क्या उपयोग कर रहे हैं?जीवनका प्रत्येक क्षण पुरुषार्थमें बीतना चाहिये । तभी हमारा कल्याण है । बिना पुरुषार्थके भाग्यभी सिद्ध नहीं होता । लिखा है—

यथा ह्येकेन चक्रेण
न रथस्य गतिर्भवेत्
एवं पुरुषकारेण
बिना दैवं न सिद्धति····

जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चलता, उसी प्रकार बिना पुरुषार्थके भाग्य नहीं सिद्ध होता ।

किन्तु पुरुषार्थके साथ धर्म तथा कर्त्तव्यकी भावना भी जरूरी है । जब यह तय है कि—

चलं चित्तं चलं वित्तं
चले जीवन यौवने
चला चले हि संसारे
धर्म एको हि निश्चलः

चित्त चलायमान है, धन चलायमान है, जीवन और जवानी चलायमान हैं। इस चलाचलीकी दुनियामें धर्मही एक मात्र निश्चल वस्तु है। तो फिर हम चलायमान चीजोंके चक्करमें निश्चल वस्तुको क्यों भूल जाते हैं ?

धर्म क्या है

प्रश्न हो सकता है कि धर्म है क्या वस्तु ? धर्मका अर्थ अंग्रेजी शब्द "रेलिजन" नहीं है। यह बड़ा व्यापक तथा अपने ढंगका अनोखा शब्द है। इसकी व्याख्या में न पड़कर हम केवल दो अर्थही समझ लें तो हमारा काम चलजाय—

यतोऽभ्युदयानिः श्रेयस स धर्मः
यत्तु आर्या क्रियमाणं प्रशंसन्ति सधर्मः

जिससे अभ्युदय तथा कल्याण हो, वह धर्म है, जिस कार्य की आर्य लोग (पंडित तथा साधु लोग, प्रशंसा करें, वही धर्म है।

स्पष्ट है कि चोरी करके अभ्युदय तथा कल्याण नहीं होता। चोरी करनेकी कलाकी प्रशंसा साधु समाज नहीं करता। अतएव बुरा काम धर्मकी श्रेणीमें नहीं आ सकता। यदि हम केवल इतनीही व्याख्या याद रखें कि जिस कार्यकी आर्य लोग प्रशंसा करते हैं वह धर्म है, तो हमारे जीवनका प्रत्येक क्षण ऐसेही धर्मके प्रतिपालनमें बीतना चाहिये।

रोगी और बीमार रहकर कोई नहीं जीना चाहता, पर शरीरको रोग लगा ही रहता है। किन्तु रोगी रहते हुये भी मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। वैद्यकशास्त्रका ही वचन है कि—

शरीरस्य चित्तस्य निर्विकारा स्थितिः
एव स्वास्थ्यम्...

शरीर तथा चित्तकी निर्विकार स्थितिही स्वास्थ्य है, हम शरीरके रोग पर काबू न पा सकें, पर मनको निरोग रख सकते हैं। चित्तकी निर्विकार स्थितिको स्वस्थ स्थिति कहते हैं। जीवनके प्रत्येक क्षण यदि मनको पाप, धोखा, क्रूरता आदि से दूर रखा जाय तो कितना बड़ा कल्याण होगा।

यह नहीं भूलना चाहिये कि हम उस परमब्रह्मके अंश हैं, उसीमें हमको मिलना है। जब तक अलग हैं, तभी तक दुःख झेल रहे हैं। अतएव प्रत्येक क्षण हमको अपने परम रूप में मिलनेकी ही सोचना चाहिये। कबीरदास ने लिखा है—

पानी ही ते हिम भया,
हिम ह्वै गया बिलाय।
जो कुछ था सो सोई भया,
अब कुछ कहा न जाय॥

परमानन्दस्वरूपा श्रीराधा सम्बन्धी लौकिक विवेचनों पर एक दृष्टि

"जिस प्रकार श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं, उसी प्रकार 'राधा' भी आनन्दस्वरूपा, परमाशक्ति हैं। धर्मकी संस्थापनाकेलिये श्री कृष्णके साथ ही साथ राधा भी पृथ्वीपर अवतरित हुईं। राधाष्टमी' हमें प्रति वर्ष राधाके अवतरणका स्मरण दिलाती है।"

राधा-एक विवेचन

श्रीपरमानन्द रस्तोगी सा. र.

भारतीय साहित्य और कला राधा कृष्णकी मधुर प्रेम-लीलाओंके चित्रणसे ओत-प्रोत है। वैष्णव भक्तोंके आराध्य हैं ब्रह्मस्वरूप कृष्ण और आनन्दरूपिणी राधा। कृष्णका स्वरूप ही राधामय है। कृष्णकी विवाहित पत्नियों—रुक्मिणी, सत्यभामा आदिको जैसे कोई जानता ही नहीं। कोई भूलसे भी रुक्मिणी कृष्ण कहता हुआ सुनाई नहीं पड़ता। राधाका नाम अविच्छिन्न रूपसे कृष्णके साथ सम्बद्ध हो गया है।

भारतीय साहित्य, विशेषकर हिन्दी, बँगला तथा गुजरातीमें राधाका विस्तृत वर्णन मिलता है। परन्तु संस्कृतके कतिपय प्रामाणिक माने जानेवाले प्राचीन ग्रन्थोंमें राधाका उल्लेख नहीं मिलता। महाभारत, विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण तथा गोपी-प्रेमके सर्वापेक्षा प्रधान ग्रन्थ भागवतपुराणमें जहाँ कृष्णके जीवन तथा गोपी-लीलाका मधुर चित्रण है, वहाँ राधाका नाम तक नहीं मिलता। उपरोक्त ग्रन्थोंमें कृष्णकी विवाहित पत्नियोंके नामोंका यत्र-तत्र उल्लेख है, जिनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जामवन्ती आदिके नाम आते हैं परन्तु राधाका नाम नहीं मिलता। अतः यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि राधा नामकी कल्पना क्या परवर्ती कालमें हुई ?

राधाके प्रेममय मधुर स्वरूपके दर्शन हमें सर्व प्रथम बंगालके अमर कवि जयदेवके गीत गोविन्दमें होते हैं। जयदेवने उसमें कृष्ण और राधाके विहारका मधुर तथा विस्तृत वर्णन संस्कृतके कोमलकान्त पदोंमें किया है। जयदेवके समकालीन कवि श्रीधरदासके काव्य ग्रन्थ 'सदुक्ति कर्णामृत' के प्रेमपूर्ण पदोंका अवलम्बन भी राधाकृष्ण विषय ही है। तत्पर-वर्ती कवि चंडीदास तथा विद्यापतिका काव्य भी राधाकृष्णकी मधुर प्रेम-लीलाओंसे ओत-

प्रोत है। तदनन्तर चैतन्य महाप्रभुने तो राधाको जन-जनकी आराध्या बनाकर देशके कोने कोनेमें पहुँचा दिया।

तब क्या यह मानना युक्ति संगत होगा कि राधा नामकी कल्पना एवं देन जयदेव अथवा उनके किसी समकालीन कवि की है? इसके लिये हमें प्राचीन ग्रन्थ-साक्ष्यकी यथार्थतापर विचार करना होगा। भागवत, हरिवंश, महाभारत तथा विष्णुपुराण आदि पृथक्-पृथक् देवी-देवताओंको लक्ष्य करके लिखे गये हैं। किसीमें विष्णु प्रधान हैं, किसीमें लक्ष्मी, किसीमें शिव और किसीमें दुर्गा। उन विशेष पात्रोंके भी किसी विशेष चरित्रको ही ध्यानमें रखकर उनकी रचनाकी गई है। अतएव यह आवश्यक नहीं कि सब पात्रोंके पूरे-पूरे जीवन वृत्त लिख दिये जाते अथवा उनसे सम्बन्धित सभी घटनाओं एवं उनके सम्पर्कमें आये सभी पात्रोंका उल्लेख कर दिया जाता। कृष्णके विषयमें भी यही बात है। 'महाभारत' में कृष्णके उस चरित्रपर विशेष बल है, जिसका सम्बन्ध महाभारत युद्धसे है। अतएव उसमें उनके शृंगारिक जीवनका विश्लेषण करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार भागवत पुराणमें उनकी बाल-लीलाओं पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है। उनके उत्तर जीवनका बहुत संक्षिप्त वर्णन ही मिलता है। यद्यपि उसमें गोपियोंके साथ उनकी प्रेम-लीलाओंका भी वर्णन आता है। आदर्शप्रधान होनेके कारण ग्रन्थकारका ध्यान कदाचित् उनकी प्रणय उपासिकाओंके नाम निरूपणकी ओर नहीं था। उनके साथ विचरण करनेवाली उनकी एक परम प्रिय गोपीका उल्लेख आता है, पर उसका भी नाम नहीं दिया गया है। इससे भी सिद्ध होता है कि नामकी ओर ग्रन्थकारका लक्ष्य ही नहीं था। वैसे कुछ भक्तगण भागवत में गोपियों द्वारा कहे हुये 'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः' में राधा नामके बीजका अनुमान करते हैं।

कृष्णकी उस परम प्रिय गोपीके सम्बन्धमें अन्य गोपियाँ कहती हैं कि उसने पूर्व जन्ममें कृष्णकी बड़ी आराधनाकी होगी, तभी वह कृष्णको इतनी प्रिय है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार इसी 'आराधना' शब्दसे राधाकी उत्पत्ति हुई।

राधा नामका उल्लेख पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, नारद पंच तन्त्र, निर्वाण तन्त्र, गौतमीय तन्त्र, सम्मोहन तन्त्र, ब्रह्मवैवर्तपुराण, भविष्यपुराण आदिमें पाया जाता है।

पद्मपुराणमें लिखा है :—

> चिदानन्द स्वरूपा सा चिदानन्द प्रदायिनी,
> सर्व लक्षण सम्पन्ना राधा नाम्नी विनोदिनी।

देवीपुराणमें उल्लेख है —

> केनचित् कारणे नैव राधा वृन्दावने वने।
> वृषभानु सुता जाता गोलोकस्वामिनी सदा।।

नारद पंचतन्त्रमें वर्णन है —

प्राणाधिष्ठात्री या देवी राधारूपा च सा मुने।
न कृत्रिमा च स नित्या सत्यरूपा यथा हरिः ॥

इसी प्रकार भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण आदिमें भी विस्तृत रूपसे राधाके सम्बन्धमें उल्लेख मिलता है। इतने प्रामाणिक ग्रन्थोंके होते हुये भी क्या यह कहा जा सकता है कि राधा नाम नव आविष्कृत तथा अप्रामाणिक है ?

उपरोक्त पुराणोंके अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रन्थोंमें भी राधाके सम्बन्धमें वर्णन मिले हैं। ईसा प्रथम शतीके राजा सातवाहनके प्राकृत भाषाके प्राचीन काव्य संग्रह ग्रन्थ 'गाहा सप्त साह' अर्थात् गाथा सप्त शतीमें राधाका स्पष्ट उल्लेख है—

मुहमारूएण नं कन्ह गोरअं राहि आएं अवनेन्तो।
एतानं बल वीनं अन्नानंवि गोरअं हरसि ॥

अर्थात् हे कृष्ण तुमने मुख मारुत द्वारा राधिकाका (मुखलग्न) गोरज (रजकण) हटा कर इन वल्लभियों तथा अन्यान्य स्त्रियोंका भी गौरव हरण किया है।

इस ग्रन्थका सम्पादन काल प्रथम शताब्दी है। अतः जिन कवियोंकी रचनायें इस ग्रन्थमें संग्रहीत हैं, उनका काल तो निश्चय ही उससे पूर्वका ही रहा होगा।

इसके पश्चात् सातवीं शताब्दीके कवि भटट्नारायण अपने वेणी संहार नाटकमें लिखते हैं :—

कालिन्द्या पुलिनेषु केलि कुलिता मुत्सृज्य रासे रसं।
गच्छन्ती मनु गच्छतोहश्रु कलुषां कंसद्विषो राधिकाय ॥

दशवीं शताब्दीमें गोदावरी तटके निवासी बिल्वमंगलने 'कृष्ण कर्णामृत' नामक ग्रन्थकी रचनाकी थी। उसमें भी राधाका उल्लेख है। प्रत्युत 'राधा पयोधरोत्संग शायिने शेष शायिने' कहकर श्रीकृष्णकी वन्दना की गई है। इस ग्रन्थको श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने दाक्षिणात्य भ्रमण कालमें दक्षिणसे लाये थे और राधा कृष्णके मधुर रूपपर मुग्ध होकर राधा कृष्णकी सुमधुर भक्ति सारे बंगाल तथा समस्त भारतवर्षमें प्रसारित की।

उपरोक्त तीनों ग्रन्थ जयदेवसे बहुत पूर्वके हैं। अतः यह कहना कि जयदेव या उनका कोई समकालीन कवि राधाका आविष्कारक है, एकभ्रान्ति है। हाँ, राधाको इतने मधुर और सुन्दर रूपमें सर्व प्रथम प्रस्तुत करनेका श्रेय जयदेवको अवश्य है, जिसके कारण राधावादको बहुत बड़ा प्रचार मिला।

यदि हम ग्रन्थ-साक्ष्यको यथेष्ट न मान कर राधाके अस्तित्व पर अविश्वास करें तो सहज ही यह प्रश्न उठता है कि निराधार नितान्त कल्पनाकी मूर्तिको भक्तोंने अपनी

आराध्य देवी कसे मान लिया ? जिस राधाने रुक्मिणी, सत्यभामा जैसी सुन्दर एवं गुणवती विवाहित पत्नियोंको भी स्थानच्युत करके कृष्णकी सहचरी बननेका गौरव पाया है, वह क्या केवल कल्पनाकी राधा हो सकती है ? यदि यह माना जाय कि राधा जयदेव अथवा उनके किसी समकालीन कवि की मधुर कल्पना मात्र हैं जो कालान्तरमं भक्तोंकी आराध्य बन गई, तो क्या यह विचारणीय नहीं है कि जिन कृष्णको लोग ब्रह्मका अवतार अथवा दूसरे शब्दोंमें साक्षात् ब्रह्म मानकर पूजते हैं, उन्हींके प्रेम वर्णन तथा विहार आदि के प्रसंगको एक कल्पित नारीके साथ इस प्रकार जोड़ देनेपर तत्कालीन भक्त समाज आपत्ति नहीं करता या हम यह समझें कि उस समयके लोगोंको कृष्ण विषयक कोई ज्ञान नहीं था। अतएव जयदेव आदिने जैसा स्वरूप कृष्ण तथा राधाका प्रस्तुत किया, उसे उन्होंने नत शिर स्वीकार कर लिया।

भागवतमें गोपीप्रेमलीलाका वर्णन है। उसी प्रसंगमें ललिता, जामवन्ती आदि कतिपय गोपियोंके नाम भी आये हैं। यदि जयदेव आदिको ही हम राधानामका आविष्कारक मानते हैं तो यह विचारणीय है कि जयदेव प्रभृतिको नये नामकी कल्पना करनेकी क्यों आवश्यकता पड़ी, जबकि यथार्थ गोपियोंके नाम उपलब्ध थे ? ललिता नाम भी उतना ही कर्णप्रिय है, जितना राधा। काव्य-पदोंमें वह उतना ही सरस मधुर तथा रागात्मक प्रतीत होता है, जितना राधा। केवल एक-दो प्राचीन ग्रन्थोंमें नामोल्लेख न होने मात्रसे ही राधाके अस्तित्वमें अविश्वास करना तथा निश्चयपूर्वक उन्हें कल्पना की उपज कह देना, अन्याय ही है।

—०—

चलो, चलें अब श्री वृन्दावन।

चलो चलें अब श्री वृन्दावन।
कल कल कालिन्दी आतुर अति, हरित धरित्री रे मृदु श्रावन।
कदम कदम पर पत्र पुष्प नव, लता द्रुमन मेरे मन भावन॥
गीत, प्रीत, संगीत मधुर मृदु, उल्लासित अति है रे जन-मन।
मिलन योग श्रृंगार अनूपम, उन्मादित व्रज के वे कन कन॥
मलयज वायु अतृप्त मधुप रव, रास विलास मधुर वह रुनझुन।
चातक रटन प्रभृत की कू कू, मत्त मयूर नृत्य अति पावन॥
व्रज बनिता झूलन पर गावत, तनक तनक चुरियन की खन खन।
कुंज कुंज प्लावित रस आनन्द, काम पराजित आज सहज नर॥
व्रज बनितन अरु लतन पतन पर, प्रेम-रतनकी छाप समरपन।
बाट, घाट, वीथी, गह, आँगन, प्रेमानन्द मगन है जन जन॥

——

जन-जनमें समाविष्ट श्रीकृष्ण-
प्रेम लोकगीतोंके रूपमें

"श्रीकृष्ण लोक-मानसावतार हैं। वे एक होकरभी अनेकमन, अनेक आत्मा और अनेक प्राणके रूपमें चतुर्दिक् परिव्यक्त हैं। उन्होंने लोक-मानसमें समाविष्ट होकर, स्वयं गीतों और पदोंके रूपमें अपनी लीलाओंको प्रकट किया है। लोकमें लीलाका ऐसा अपूर्व अभिनय क्या और कहीं मिलेगा?"

लोक गीतोंमें श्रीकृष्णकी मधुर लीलायें

श्रीरामनारायण उपाध्याय

लोकगीतोंमें भगवान् कृष्णको लेकर अत्यन्तही मधुर विनोद संजोया हुआ है। भगवान् कृष्ण भलेही अवतारी पुरुष रहे हों, लेकिन ब्रजवालाओंकेलिये तो वे प्रियतर सखा थे। एक कविके शब्दों में तो—

जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अभेद अछेद सुवेद बतावें,
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावें।

अर्थात् जिसे वेदों ने अनादि, अनन्त, अखण्ड और अभेद बताया, उसेही अहीरकी छोकरियों ने लोटे भर छाँछ पर नाच नचाया है।

लेकिन भगवान् कृष्णभी कम नहीं थे। उनके कारण ग्वाल बालाओंकेलिए राह चलना मुश्किल होगया था। देखिये एक ग्वालिन कह रही है—

अरे कोई दौड़ो रे, कन्हैया मोहे लूटे।
हार हपक लिन, चिर छुपक लिन, मोतियनकी लड़ टूटे,
अरे कोई दौड़ो रे, कन्हैया मोहे लूटे॥

—अरे कोई दौड़िये, कन्हैया मुझे लूट रहा है। उसने मेरा हार छीन लिया, चीर खींच लिया और मोतियोंकी माला तोड़ डाली है।

दूसरी ग्वालिन कह रही है—

जल जमुनाका तीर, कन्हैया ने पकड़्यो चीर रे,

हऊं तो गई थी नीर भरणको, वो तो बड़ो बेपीर रे ॥
कन्हैया ने पकड़्यो चीर रे ॥

—यमुनाके किनारे कन्हैयाने मेरा चीर पकड़ लिया है। मैं तो पानी भरने गई थी, लेकिन वह बड़ा वेदर्दी है।

ग्वाल-वालायेंभी कम नहीं। एकबार उन्होंने मिलकर कृष्णको छकाने की सोची। इस पर उन पर क्या बीती, इसकाभी वर्णन सुनिये—

वृन्दावनकी कुंज गलिन में, गऊआ चरावे नन्दलाला।
छत्तीस कलाकी अदल बाँसुरी, बजावता मन मोहन।
सासु वरजे बहू हमारी, दही बेचनको नहीं जाना।
नन्दको कान्हा बड़ो रसीलो, पलमें हुरमत ले डारे।
उलट समझ बहू लाई हो दिलमें, डर लागत तो रहणा घरमें।
बरोबरीका किया मनसुवा, सवन कियो सोलई सिंगार।
मृग नयनी चतुर कामणी, एक से एक बणी अनमोल ॥
कजराको लागो कोर सखीरी, नैन बण्या दो खंजर।
मारे कोकिला बाण, जसी रणमें चली रहा तलवार।
बिन्दी शोभादार नार वोका, झाला को मची रह्यो घनघोर।
नथनी शोभादार नार वोका, चंद्र चमकतो मुख पर।
भरी दहीकी मटकी ग्वालन मथुराको, लगी ऊभी बाट।
चाल चले गजराज, नार वोका, बिछुआको हुइयो रह्यो झनकार।
राह रोककर खड़्या कन्हैया, खड़ी रहो सब ग्वालन।
दई मोल मटकीको थारो, खरीद करूं सब माखन।
सिरकी मटकी भुई पटको, गौरस बिखर्यो काई करन्।
बड़ा दुःख म पड़ी सखी री, दिलको दर्द दिल जाण।
कृष्ण रह्यो बनमाय, ग्वालन जाई दोड़ी यशोदा पास।
जसी बदन पर बीती वसी जाई, न कही सारी बात।
थारा किसन छे, उत्तानपाती, माखन लुट्यो विन्द्रावनम्।
बहुत करी अरदास, मगर ऊ लिपट रह्यो मारा तन म।
बड़ी हो जात बेगम ग्वालन, खड़ी-खड़ी लड़नअ आई,
मारो कन्हैया सोयो पालण, अभी कहो तो देऊं जगाय।
एक-एक सखी रही अनमनी, कयण लगी अवनी जाणूं गोकुल गांव।

वृन्दावनकी कुंज गलियोंमें नन्दके लाला गायें चराते थे। वे छब्बीस कलाओंसे युक्त बाँसुरी बजाते थे और सबका मन मोहते थे। एकदिन सासने कहा— हे बहू, तुम दही बेचनेकेलिये उधर मत जाया करो।

नन्दका लड़का बड़ा रसीला है, वह क्षण भरमें मान ले डालता है। बहूको बात उलटी लगी और उसने सोचाकि घरमें रहना तो डरना है।

अतएव बराबरीकी सहेलियोंने सलाहकी और सब सोलह श्रृङ्गारोंसे सज उठीं।

उन मृगनयननी चतुर स्त्रियों ने एक से एक बढ़कर गहने पहने। उन्होंने आँखों में काजल आँजा और उनकी आँखें खंजर लगने लगीं। वे जिन ओर भी आंख उठाकर देखतीं, ऐसा लगता मानो रणक्षेत्र में तलवारें चल रहीं हों।

उन्होंने माथे पर चमकदार बिन्दी लगाई थी और उनके सिर पर झूमर लटक रही थी। उन्होंने नाकमें नथिनी पहनी और उनका मुख ऐसे लग रहा था, मानों चन्द्रमा उदय हुआ हो।

उन्होंने अपने सिर पर दूध दहीकी मटकियाँ लीं और वे मथुराके रास्ते लग गईं।

वे मदमत्त हाथीकी तरह चल रही थीं और उनके बिछुओंकी झनकार से सारा जंगल गूँज रहा था।

इतनेमें उन्होंने देखा—कृष्ण रास्ता रोककर खड़े थे और कह रहे थे कि, हे ग्वाल-वालाओ, ठहरो और अपनी मटकियोंका मोल बताओ, मैं आज सारा माखन खरीद लूँगा।

इतना कहकर उन्होंने सारी मटकियोंको सिरपर से जमीन पर गिरा दिया।

यह देखकर ग्वाल बालायें सोचने लगीं कि अब क्या करना चाहिये। दूध-दही तो बिखर गया, लेकिन दिलका दर्द दिलही जानता है। इधर कृष्ण तो वनमें रहे, और उनमें से एक सखी दौड़कर जसोदाके पास पहुँची और जैसी उस पर बीती थी, वैसी सब बातें कह दीं। उसने कहा कि हे जसोदा, तुम्हारा कृष्ण बड़ा शरारती है, उसने मुझे वृन्दावनकी राहमें लूट लिया।

मैंने बहुत विनतीकी, लेकिन उसने मेरे शरीरसे लिपट सारा गोरस बिखेर दिया।

इस पर जसोदा ने कहा—हे ग्वालन! तुम बड़ी ढीठ हो और बिना कारण मुझसे लड़ने आई हो।

देखो, मेरा कन्हैया तो झूले पर सोया है। कहो तो उसे जगा दूँ। इन सब सहेलियाँ सन्न रह गईं और उन्होंने निश्चय किया कि अब कभी गोकुल गाँव नहीं जाना चाहिये।

श्रीकृष्ण-सन्देश

क्या आप श्रीकृष्ण-सन्देश पढ़ते हैं? आजके दुःख, संघर्ष और अभावपूर्ण स्थितियों में श्रीकृष्ण-सन्देश से ही जीवनकेलिये सही मार्ग प्राप्त हो सकता है। अपने और अपने कुटुम्बके कल्याणकेलिये श्रीकृष्ण-सन्देशकी प्रति अपने घरमें अवश्य रक्खें।

—०—

स्वामी हरिदासजीकी रस-सिक्त भक्तिका
भावमय विवेचन

"स्वामी हरिदास रसके अवतार थे। उन्होंने राधाकृष्णकी अपनी दिव्य भक्तिको 'रस' के रूप में परिवर्तित करके, आध्यात्मिकताके कंकरीले मार्गको हरे-भरे कुंजों से ढंक दिया है। ऐसे कुंजों से, कोयल और पपीहे की मृदु, मधुर स्वरों से दिन रात गुंजित रहते हैं। स्वामी हरिदासको यह अलौकिक देन भक्तोंकेलिये वरदायिनी ही सिद्ध हुई है।"

स्वामी हरिदास और उनके अर्चना-पुष्प

डा० श्रीसुरेशव्रतराय एम.ए.डी. फिल

मुरलीधर, वृन्दावन विहारीकी रूप माधुरीने अनेक भक्तों, कवियोंको विमोहित किया है। वल्लभाचार्य अष्टछापके कवियोंसे लेकर रसखान, मीरा और नरोत्तम आदिने अपना सारा जीवन कृष्णार्पण कर दिया। इनके काव्यमें कृष्णके विभिन्न पक्ष मुखरित हुये हैं। स्वामी हरिदासका उल्लेख कृष्ण भक्तकी अपेक्षा महान् संगीतज्ञके रूपमें मिलता है, जिन्होंने तत्कालीन समाजको तानसेन, बैजू, मदनराय, रामदास, सौरसेन, दिवाकर जैसे संगीतज्ञ दिये। हरिदासका कृष्ण-भक्त रूप सामान्य दृष्टिसे ओझल रहा है। राजकीय इतिहासकारों, अबुलफजल आदि ने भी अपने ग्रन्थोंमें स्वामी हरिदासको विशेष चर्चा नहीं की है।

वस्तुतः कृष्णका कलात्मक पक्ष जैसा हरिदासजीकी रचनाओं में मुखरित हुआ है, अन्य कवियोंकी रचनाओंमें कठिनतासे मिलेगा। उच्चतम संगीतज्ञानके कारण स्वामी हरिदास की रचनायें सजीव हो उठी हैं, उनकी भक्ति संगीतमय है। रास-नृत्यकी स्वरमाधुरी से ओत-प्रोत हरिदासजीका काव्य रसपरिपाककी क्षमतामें अद्वितीय है। पढ़ते-पढ़ते मन अनायास हजारों वर्ष पूर्व द्वापरकालीन कालिन्दी कूल पर जा पहुँचता है, जहाँ राधाकृष्ण युगल के साथ नृत्य करने लगता है। नूपुरों की झंकार, पैरों की थिरकन, डफ और मृदंगकी थाप, वीणा की झंकार और वंशीकी ध्वनिकेसाथ पढ़नेवालेका मन भी थिरकने लगता है, वह स्वयं

रासनृत्यमें भाग लेनेवालोंकी अनुभूतिमें रसमग्न हो जाता है। एक ओर उन्होंने भक्ति, दर्शन, आध्यात्मिक सिद्धान्त सम्बन्धी अनेक रचनायेंकीं, दूसरी ओर संगीतकी अद्वितीय प्रतिभासे पदों एवं कृष्णभक्तिको लोकप्रिय बनानेमें महत्वपूर्ण योगदान दिया। संगीत एवं साहित्य-दोनों दृष्टियोंसे स्वामी हरिदासका अपना विशिष्ट स्थान है। भले उनका नाम अष्टछाप एवं फुटकर कवियोंमें न लिया जाता हो, भले हिन्दी-साहित्यके इतिहासकारों ने उन्हें मान्यता न दी हो, परन्तु संगीत परम्परा पर उनकी अमिट छाप पड़ी। उनकी देन तथा कृतित्वको देखते हुये उनका विशिष्ट स्थान हमें स्वीकार करनाही होगा।

प्रचलित रतिभाव, सखाभाव एवं दास्यभावकी अपेक्षा हरिदास ने सखीभावको आराधनाकेलिये अपनाया। इनके उपास्य केवल कृष्ण न होकर, राधाकृष्णकी युगल जोड़ी थी। हरिदासजीकी भक्तिमें राधाका स्थान अनोखा है, वह कला मर्मज्ञा हैं। उन्हींकी कृपा से लोगोंको कलाका अंश प्राप्त हो जाता है—

गुनकी बात राधे तेरे आगेको जाने
जो जाने सो कछू उनहारि
नृत्य गीत ताल भेदनिके भेद न जाने
काहू जिते तिते देखे झारि
तत्व शुद्ध, सुरूप रेख परमान जे
विज्ञ सुघरते सुर पचे भारि,
श्री हरिदासके स्वामी स्यामा कुंज विहारी नेक तुम्हारी।
प्रकृतिके अंग-अंग और गुनी परे हारि॥

इतनाही नहीं कि, राधिकाको ताल, नृत्य, गीत के भेदों, अंगों, रूपों और प्रमाणों का अद्वितीय ज्ञान है, बल्कि विहारीलालभी राधाके सम्पर्कमें आने से सुघर गये—

सुघर भये बिहारी याही छांहते
जे जे गही सुघर स्वर जानयेनकी ते ते याही बांहते॥

इसप्रकार राधिका कृष्णके व्यक्तित्वके पूरक रूपमें आती हैं। इन्ही नित्यकुंज विहारी राधाकृष्णकी अर्चनामें हरिदासजीने जीवन सार्थक किया। इस अनन्य भक्तिमें ही हरिदासजीको सारे देवी देवताओंके दर्शन होते थे।

स्वामीजी ने सैद्धान्तिक विषयों पर १८ और शृङ्गार सम्बन्धी २१० पदोंकी रचना की। उनके २२८ पद अष्टादश सिद्धान्त और 'केलिमाल संग्रहके' नाम से संग्रहीत हैं। इन सारे पदोंको हरिदासजी ने राग रागिनियोंमें निबद्ध किया था। श्रीगोपालदत्तके अनुसार राग-विभाजन निम्न रूपमें किया गया है—

श्रीकेलिमाल संग्रहमें

कान्हरा	३०	पद
केदारा	२२	पद
कल्याए	१२	पद
सारंग	११	पद
विभास	१०	पद
मलार	८	पद
गौड़	२	पद
वसन्त	५	पद
गौरी	६	पद
नट	२	पद
विलावल	२	पद
	२१०	पद

अष्टादश सिद्धान्त

विभास	४	पद
बिलावल	१	पद
आसावरी	७	पद
कल्याण	६	पद
	१८	पद

शृङ्गार सम्बन्धी पद संयोग शृंगार और विशेषतः रासलीलासे सम्बन्धित हैं। इन्हीं में काव्य-प्रतिभा और भक्ति चरमसीमा पर पहुँच गई है।

हरिदासजी बारम्बार हरिशरणमें जानेका अनुरोध करते हैं—

हरि भज हरि भज छाँड़ि मान नर तन कौ,
मति घछेरे मति वंछे तिल-तिल धन कौ।
अन मांग्यौ आगे आवैगो ज्यौं पल लागैं पलको,
कहि श्रीहरिदास मीच ज्यों आवै त्यों धन है आपन कौ॥

युवावस्था धन ऐश्वर्यके मदमें चूर एवं वृद्धावस्था आने पर रामनाम स्मरण करके प्रतीक्षा करनेवालोंको हरिदासने गंभीर चेतावनी दी है। काल निश्चय नहीं, कब ग्रस ले और उस समय महल, धन, ऐश्वर्य सब एक ओर धरा रह जायगा—

हरिके नामको आलस कित करत है रे, काल फिरत सर साधें
बेर-कुबेर कछू नहिं जानत चढ़यौ रहतु है कांधें।
हीरा बहुत, जवाहर संचे, कहा भयौ हस्ती दर बांधें,

कहि श्रीहरिदास महलमें बनिता बनि ठाड़ी भई,
एकौं न चलत जब आवत अन्तकी आंधैं ॥

अतः यदि प्रेम करना है, तो हीरे, जवाहिरातों, अटारी, नारीसे नहीं, वृन्दावन विहारी से करो। यदि किसीकी संगति करनी है तो साधुओंके साथ बैठो, इसीमें जीवनका कल्याण है।

हित तौ कीजै कमल नैन सों, जाहितके आगे और हित लागै फीको,
कै हित कीजे साधु संगति सों ज्यों किलविष जाय सब जीको,
हरिकौ हित ऐसो जैसो रंग मजीठ, संसार हित रंग कसूम दिन दुजीको।
कहि श्रीहरिदास हित कीजै श्रीविहारी सों, ओर निवाहु जानि जीको ॥

फिरभी सांसारिकतामें लिप्त जीव नहीं मानता, उसे विषयानुसक्ति में ही आनन्द मिलता है। उसे हरिदासजी अन्तिम चेतावनी देते हैं–भवसागर अथाह है, जन्म ले लेने पर इसमें पैठना और पार करना आवश्यक है, अथाह सागर, भयकर लहरें, हिंसक जीव, झंझामें रामनामही ऐसी नैया है, जिससे सुरक्षित पार उतरा जा सकता है। हम सब मछलीके समान हैं, जिसे फँसानेकेलिए जालोंका अभाव नहीं, आहार बना डालनेवाले एक से एक भयंकर जीवोंके समूह तैर रहे हैं—

संसार समुद्र मनुष्य मीन नक्र मगर और जीव बहु बंदिस,
मन बयार प्रेरे स्नेह फन्द फंदिस।
लोभ पंजर लोभी मरजीया पदारथ चारि खदि खंदिस,
कहि श्रीहरिदास तेई जीव पार भये जे गहि रहे चरन आनन्द नन्दिस ॥

इस प्रकार अपनेको कृष्णार्पणकर भक्त उनकी लीलाओंका चिंतन करता है। एक ही पंक्तिमें "माईरी सहज जोरी प्रगट भई रंगकी गौर श्याम घन दामिनी जैसे" राधाकृष्णका कितना सुन्दर चित्रण बन पड़ा है। कृष्ण के त्रिभंगी रूपका स्वामीजी ने अपने नीति कुशल ढंग से बड़ा युक्तिपूर्ण वर्णन किया है—

आज त्रनु टूटत है री ललित त्रिभंगी पर,
चरन-चरन पर मुरली अधर धरैं चितवनि बङ्क छवीली भूपर,
चलहु न वेग राधिका पीय पै, जो भयौ चाहति हो सर्वोपर।
श्रीहरिदासके स्वामी कौ समयौ, अब नीकौ वन्यौ हिलमिल केलि अटल भई रति धूपर ॥

राधिका मान करती हैं, रूठती हैं, और कृष्ण मनाते हैं, पर राधिका मानती नहीं। दोनोंका रूठना मनाना चलता है। कृष्ण बारम्बार कहते हैं, "भूलें-भूलें हूँ, मान न करिरी प्यारी, तेरी भौंहें मैली देखत प्रान न रहत तन" अथवा "तू रिस छांड़िरी राधे"। राधिकाकी कला मर्मज्ञताके साथ रतिलीलाभी हरिदासकी पैनी दृष्टि से छूटने नहीं पाई है।

अलौकिक पक्षका लौकिकके साथ समन्वय किया है। राधाकृष्ण श्रृंगार कर रहे हैं वन के एक कोने में, उसकी प्रतिक्रिया देखिये भक्तके काव्यमें—

एक समें एकान्त वनमें करत सिंगार परसपर बोई,
वे उनके वे उनके प्रतिबिंबन देखत रहत परस्पर भोई।
जैसे नीके आज बने ऐसे कबहूँ न बने, आरसी सब झूंठी कैसी और कोई।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, रीझि परस्पर प्रीति मथोई ॥

दोनोंकी श्रृंगार एवं प्रेमलीला ऋतुके अनुसार अपना वाह्य रूप बदलती जाती है। दोनों बोलते हैं हंसते हैं, चुपचाप जाकर पीछे से आँख बन्द कर लेते हैं, फूले वनों, उपवनों में विहार करते हैं, होली खेलते हैं, फाग गाते हैं। वर्षामें हिंडोला झूलनेके साथ कविकी कल्पनाभी ऊपर नीचे झोंके लेने लगती है—

झूलत डोल दोऊ जन ठाढ़े
है गति जोर सहित जै सिर जाकें डाड़ी गहें गाढ़े,
बिच-बिच प्रीति रहसि रस रतिका राग रागनिनके जूथ बाढ़े।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रागहिके रंगि काढ़े।

राधाकी कला मर्मज्ञताके साथ श्रीकृष्णभी कुछ कम नहीं। उनकेलिये राधिका स्वयं कहती हैं "कुंज बिहारी हैं तेरी वलैया लेंउ नीके हो गावत, राग रागिनीनके यूथ उपजावत"। दोनोंकी कलासिद्धि रासनृत्यमें मुखरित हो उठी है। संगीतज्ञ होनेके कारण इसका स्वामी हरिदास ने बड़ा यथार्थ एवं सजीव चित्रण किया है। यह रास नृत्य केवल प्रेमलीला, आधारहीन नृत्य नहीं है, इसकी एक-एक धुन गति से अलौकिक, राग-रागिनियों और बोलोंकी अभिव्यंजनासे पूर्ण है—

रुचि के प्रकास परस्पर खेलन लागे,
राग रागिनी अलौकिक उपजत, नृत्य सङ्गीत अलग लगि लागे।
रागहीमें रंग रह्यौ रंगके समुद्र में ये दोऊ झागे।
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी वैरंग रह्यौ रसही में पागे ॥

शास्त्रीय संगीतकी धुनों और तालके साथ नृत्य प्रारम्भ हो जाता है। इसमें केवल वंशीकी धुन और नूपुरोंकी रुमझुम नहीं है, मृदंग, वीणा, किन्नरी आदि वाद्य, ध्रुपद, अंगहार रसपरिपाकमें अद्भुत योग दे रहे हैं। एक अजीब रसमें सब डूबे जा रहे हैं—

परस्पर राग जम्यौ समेत किन्नरी मृदंग सू तार,
तिनहु सुरके तान बधान धुर धुरपद अपार।
विरसलेत धीरज न रह्यौ तिरपलागडाट सुर मोर निसार,
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा जे जे अंगकी गति लेति अति निपुन अंग-अंगहार ॥

राग-रागिनियोंकी रसात्मकता, घुंघरुओंकी झंकारके साथ पशु-पक्षी, प्रकृतिभी एकाकार हो जाती है। एक-एक कण उस संगीतमें निमग्न होने लगता है। कोयल कुहू-कुहू, पपीहा पीपी और समय असमय मेघ अपने गर्जनसे अलौकिक रास नृत्य रचाने लगते हैं, जिसमें सबकेसब तत्व कालिन्दी कूलके नृत्यसे एकाकार हो जाते हैं,—

नाचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामहि रिझावत।
तैसी ये कोकिला अलापत पपीहा देति सुर,
तैसोई मेघ गरजि मृदङ्ग बजावत।
तैसी ये स्याम घटा निसिकारी, तैसी ये दामिनी कौंधि दीप दिखावत,
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी रीझि राधे हंस कंठ लगावत॥

राधिका नृत्यका नेतृत्व कर रही हैं, नृत्यकी गति बढ़ती जा रही है, 'औघर' ताल और पैरोंके तथाकारके साथ नृत्य अधिकाधिक गतिमान होने लगता है। किसी को तनकी सुधि नहीं, धुनके आधार पर सबकी थिरकन, गति स्वयं बढ़ती जा रही है—

कुंज बिहारी नाचत नचावत लाड़िली नीके।
औघरताल धरें श्री स्यामा ताता थेई बोलत संगी पीके।
ताण्डव लास्य और अंगको गनें जे जे रुचि उपजति जीके,
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कौ मेरु सरस बन्यौं और गुन परे फीके॥

यह नृत्य ताण्डव लास्यके सम्मिश्रित रूपमें गति पकड़ता जाता है। ऋतुके अनुसार रूप बदलता रहता है। वर्षाऋतुमें मेघ, मलारकी धुने और फगुआमें बसन्तकी धुने एक नई थिरकन, नया स्पन्दन उत्पन्न करती हैं। चार चाँद लगा देती हैं। होली पर तो—

उड़त अबीर कुमकुम छिरकत खेल परस्पर सूलह,
बाजत ताल रबाब और बहुत तरनि तनया कूलह॥

नृत्य अपनी अन्तिम अवस्था पर पहुंच जाता है। पवन स्थिर हो जाता है, उसकी गति मन्द पड़ जाती है। यमुनाका प्रवाह थम जाता है। चाँदनीके साथ एक अलौकिक आनन्दकी वृष्टि होने लगती है। अलग-अलग वाद्योंकी ध्वनि एकहो जाती है। केवल एक अनाहत, अखण्डनाद गूंजने लगता है। उसी नाद ब्रह्ममें सबको परमानन्दकी अनुभूति होने लगती है, जिसमें सब बेसुध हो जाते हैं—

अद्भुत् गति उपजत अति नृत्तत
दोऊ मंडल कुंवर किशोरी।
सकल सुगन्ध अंग भरि भोरी पियनृत्तत
मुसकन मुख मोरी परिरंभन रस रोरी,

ताल धरैं वनिता मृदंग चंद्रागति घात बजै थोरी-थोरी ।
समय पाय भाषा विचित्र ललिता गायन चित चोरी,
श्रीवृन्दावन फूलन फूल्यौ पूरन शशि त्रिविध पवन बहैं थोरी-थोरी ।
गति विलास रस हास परसपर, भूतल अद्‌भुत्‌ जोरी,
श्री जमुना जल विथकित पुहुपनि, वरषा रतिपति डारत त्रन तोरी,
श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजविहारी कौ जू रस रसना कहे कोरी ॥

इस प्रकार श्रवण, कीर्तनसे प्रारम्भ हुआ संगीत रासनृत्यके माध्यम से अखण्ड नादमें लीनहो जाता है । इस रासनृत्यमें गानकी अनेक पारिभाषिक शैलियों जैसे ध्रुपद, लाग, डाट, टिरिय, घात, चन्द्राघात अवहृत होती हैं । वाद्योंमें झांझ, मंजीरा, वंशी, वीणा, किन्नरी, डफ, रवाव तकके प्रयोगका वर्णन मिलता है । नृत्यमें ताण्डव, लास्य, भेद-विभेद और अंग-हार जैसे शब्दोंका प्रयोग हुआ है । यही नहीं, पदोंमें गीत, रास, त्रिभंगी, तत्तायेई बोलोंका भी प्रयोग हुआ है । इस प्रकार संगीत, काव्य और भक्तिकी त्रिवेणीकी शीतलताने उस काल के एवं भावी पीढ़ियोंको आत्मविभोर कर दिया । हरिदासकी काव्य और संगीतधारामें जो डूबता है वह डूबाही रहना चाहता है, पुनः इस कण्टकाकीर्ण भवबन्धनमें लौटनेका नाम नहीं लेता ।

—०—

श्रोताओंके लक्षण

जैसे हंस दूधके साथ मिलकर एक हुए जलसे निर्मल दूध ग्रहण कर लेता है और पानीको छोड़ देता है, उसी प्रकार जो श्रोता अनेक शास्त्रोंका श्रवण करकेभी उसमें से सार भाग अलग करके ग्रहण करता है, उसे 'हंस' कहते हैं ।

जिस प्रकार भली भाँति पढ़ाया हुआ तोता अपनी मधुरवाणीसे शिक्षकको तथा पास-आनेवाले दूसरे लोगोंको भी प्रसन्न करता है, उसी प्रकार जो श्रोता कथावाचक व्यासके मुंह से उपदेश सुनकर उसे सुन्दर और परिमित वाणीमें पुनः सुना देता है, और व्यास एवं अन्यान्य श्रोताओंको अत्यन्त आनन्दित करता है, वह 'शुक' कहलाता है ।

जैसे क्षीरसागरमें मछली मौन रहकर अपलक आँखोंसे देखती हुई सदा दुग्धपान करती रहती है, उसीप्रकार जो कथा सुनते समय निर्निमेष नयनों से देखता हुआ मुंह से कभी एक शब्दभी नहीं निकालता और निरन्तर कथा रसका ही आस्वादन करता रहता है, वह प्रेमी श्रोता 'मीन' कहा गया है ।

जो मूर्ख कथा श्रवणके समय रसिक श्रोताओंको उद्विग्न करता हुआ बीच-बीचमें जोर-जोर से बोल उठता है, वह 'वृक' कहलाता है ।

—०—

जीवनकी दो विषम अवस्थाओं धैर्य-अधैर्यकी व्याख्या

"धैर्य ही जीवनकी सफलताका सम्बल है। जिसके पास जितना ही अधिक 'धैर्य' होता है, उसकी नाव उतनी ही अधिक तटके निकट होती है। अतः कहना ही पड़ेगा कि धैर्य अपना अभिन्न सहचर है। अपने इस प्रिय और अभिन्न सहचरके संबंधमें जितना ही अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाय, थोड़ा है।"

संकटकालमें धैर्य-अधैर्य

श्रीसीकर

प्रश्न—"आध्यात्मिक जीवनमें उन्नति एवं उसके द्वारा प्राप्त लाभका मूल्यांकन इस बातसे किया जाता है कि साधककी धारणा परमेश्वरके अस्तित्वमें कितनी निश्चयात्मक और उसकी पूर्ण न्याय युक्त नीतिमें निजके कितने विश्वास और समर्पणकी वृद्धि हुई है! मनुष्य प्रार्थना करता है, पूजा इत्यादि भी, किन्तु फिर भी जब संकटका समय आता है तो अनुभव होता है कि परमेश्वरके आश्रयमें भरोसेका अभाव होनेसे अधैर्य कितना व्याकुल करता है। इस विषयमें गीता ज्ञानके प्रकाशसे अनुगृहीत कीजिये। मनुष्य इसकी चर्चा करता रहता है, किन्तु किस मार्गका अवलम्बन करे, जिससे भगवान्‌में श्रद्धाकी वृद्धि हो। मेरे विचारमें इस्लाम और क्रिश्चियन धर्मोंके अनुयायी दुख और संकट कालमें सहायताके लिये परमेश्वरका आश्रय अधिक लेते हैं। निस्सन्देह परमेश्वर प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक अवसर पर सहायक होता है। परन्तु मनुष्यको उसकी सत्ता एवं सहायताका अनुभव नहीं होता। यह स्वयं मेरी गाथा है।"

उत्तर—गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि मायाके द्वारा ज्ञान ढँका रहता है, इससे सब जीव मोहित रहते हैं। सत्य ज्ञान यह है कि शरीर रूप यन्त्रमें आरूढ़ सपूर्ण प्राणियोंको परमेश्वर उनके कर्मोंके अनुसार कठपुतलीके समान भ्रमाता है, 'करम गति टारे नाहिं टरी'। आर्तभक्तकी पुकार परमेश्वर अवश्य सुनता है, परन्तु न्यायकारीके नाते किसीका पक्षपात नहीं करता। परमेश्वर सब भूतोंके लिये एक-सा है, न कोई उसका प्रिय है न अप्रिय। पुकार सुननेका अर्थ इतना ही है कि 'सुहृदयम् सर्वभूतांना' के नाते जिस रूपमें जिस व्यक्तिको सच्ची सहायता पहुँचा सके, वह पहुँचावे।

स्वार्थमें लिप्त नाशके भयसे जीव जब अत्यधिक निराशामें भगवान्‌को बड़े आर्त भावसे पुकारता है, तो वे सर्व शक्तिमान् उसकी स्वार्थमयी किन्तु हृदयसे निकली, प्रार्थना को सुनकर परम न्यायकारीके नाते उसके भाग्यमें चाहे कोई हस्तक्षेप न भी करें, तथापि उसकी लगनसे उत्पन्न शरणागतिका फल देनेसे अपनी अतुल दयासे रुक नहीं सकते। यह फल भक्तको सकाम भक्तिसे निष्काम भक्तिमें शनैः शनैः परिवर्तित होनेमें मिलेगा, जो सच्ची सहायता ही होगी। इस प्रकार आर्त भक्तका सर्वदा लाभ ही लाभ रहता है। भाग्य-वश एवं ईश्वरकी अपार न्याय परिपूर्ण महिमासे यदि उसका कष्ट व संकट कट जाय, तब तो कृतज्ञताके भावसे युक्त होकर उसकी श्रद्धामें कितने बलका संचार हो जायगा, इसका अनुमान कर लिया जाय। विपरीत दशामें लगनकी प्रबलतासे उत्पन्न एकाग्रतामें हृदयके अन्तःस्थलसे की हुई प्रार्थना अपना शुभकारी शान्तिप्रद प्रभाव डाले बिना न रहेगी। परमेश्वरके ध्यानमें लौ लगाना सिखादेगी। अतः प्रत्येक क्षण जगदीश्वरको स्मरण करते हुए अपना कर्त्तव्य कर्म करनेके अतिरिक्त मनुष्यके हाथमें और है 'ही क्या। जिस विधि राखे राम' यही पूर्ण समर्पण प्रपत्तिका मार्ग है। भगवान्‌ने अन्तिम ज्ञान गीतामें यही दिया है।

तब लगि कुसल न जीव कहुं सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुं, शोक धाम तजि काम ॥

जो शान्तिका सच्चा इच्छुक है और साथ ही मननशील पुरुषार्थी है, वह स्वार्थमयी भक्तिके आश्रयसे लाभ उठाता हुआ अन्तमें इस प्रकार परम स्थान प्राप्त कर लेनेकी आशा कर सकता है।

अधैर्य व्यापता है सत्य ज्ञानके अभावमें। सत्य ज्ञान है कर्म विपाकमें अटल विश्वास एवं सत्य-सात्विक मार्गमें उन्नतिके लिये भगवान्‌के सर्वदा सहायक रहनेका दृढ़ निश्चय।

प्रार्थी अथवा पुजारी भक्तकी यह कामना कि मेरा संकट, दुःख और कष्ट येन केन प्रकारेण दूर हो ही जाना चाहिये, उसके अधैर्यकी जड़में छिपी रहती है। गीता ज्ञानके प्रकाशमें ही उसको इससे छुटकारा पानेकी आशा रखनी चाहिये।

सत्यमें विश्वासका नाम सात्विक श्रद्धा है, शास्त्रका पठन पाठन एवं मनन तथा महात्माओंका सत्सङ्ग-यह मार्ग है सत्यको पहचाननेका। सात्विक श्रद्धा उत्पन्न हो जाने पर अधैर्यके लिये अन्तःकरणमें स्थान ही नहीं रह जाता। महान् आत्माओंकी जीवनचर्या इस तथ्यको भली भाँति दर्शाती है।

स्वाध्याय, सत्सग और मननद्वारा मनोगत संशय निवारण होनेपर विश्वासमें वृद्धि होती है, विश्वास बढ़ने पर साधनामें मन लगता है। साधनासे कुछ अनुभव, अनुभवसे श्रद्धा, फिर श्रद्धासे विश्वासमें वृद्धि। इस प्रकार श्रद्धा विश्वासका चक्र चलने लगता है।

भगवान् कहते हैं कि योगीजन भी अपने हृदयमें स्थित आत्मा रूपी परमेश्वरको यत्न करने पर ही तत्वसे जान पाते हैं और जिन्होंने अपने अन्तःकरणको शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करने पर भी इसको नहीं जानते। अन्तःकरणकी शुद्धिकेलिये यज्ञ

दान और तप—यह तीनों ही आवश्यक हैं। ये बुद्धिमान पुरुषको पवित्र करते हैं। इनको तथा और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्मोंको आसक्ति और फल त्यागकर अवश्य करना चाहिये।

ईश प्रार्थना सदैव कल्याणकारी है, परन्तु पूर्व कर्मानुसार फल रूपी भाग्य को बदल देनेके लिये केवल मौखिक प्रार्थना संकट नाशक होगी, यह अंध विश्वास है। स्वार्थ की प्रधानतासे उच्च विश्वासके प्रभावमें भी क्षय होने लगता है और इस प्रकार वह अन्ध विश्वास ही रह जाता है। महात्मागांधीने कहा है कि केवल मुख द्वारा राम नाम रटनेसे कुछ नहीं होता। सोच समझकर राम नाम जपा जाये और जपके नियमोंका पालन करते हुए जीवन विताया जाये। ईश्वरका नाम लेनेके लिये मनुष्यको ईश्वरमय होना चाहिये।

इस विधिसे भाग्यरूपी अमिट दुःख चाहे न मिटे, परन्तु उनकी दुःखरूपतासे निवृत्ति मिलनेमें निस्सन्देह सहायता मिलेगी, जो धैर्य वर्द्धक होगी।

"निस्सन्देह परमेश्वर प्रत्येक क्षण तथा प्रत्येक अवसर पर सहायक होता है"—यह धारणा वहां तक ही सत्य है, जहाँ तक जीवके वास्तविक कल्याणका संवंध है। पूर्व कर्मानुसार फल रूपी भाग्यके अदल बदल देनेमें उसकी सहायताकी आशा निरर्थक है, जैसा उपरोक्त विवेचनसे प्रत्यक्ष है।

मलिन हृदयमें स्थित परमेश्वरका स्वरूप ऐसे ढका रहता है, जैसे वादलसे सूर्य। हृदयकी शुद्धिकेलिये गीता माताने मार्ग स्पष्ट वताया है, अतिशय श्रद्धा, धैर्य एवं पुरुषार्थ द्वारा ही यह स्थिति प्राप्त हो सकती है।

सचेतक स्वर

यदि वोलना उचित और आवश्यक ही मालूम पड़े तो ऐसी चीजोंके वारेमें बोलो, जिनसे आत्माकी उन्नति होती है। शब्दोंका अपव्यय और आत्म-निरीक्षणका अभाव ही मुखका बुरा उपयोग करना सिखाते हैं। हाँ, आध्यात्मिक सत्संग और चर्चासे आत्मिक उन्नतिमें वड़ी सहायता मिलती है।

आत्माकी प्यास बड़ी-वड़ी वातोंसे नहीं बुझती, सदाचारमय जीवनसे ही मनको शक्ति मिलती है। पवित्र और शुद्ध अन्तःकरण ईश्वरमें हमारे विश्वासको दृढ़ करता है।

तेरे असंयामित औ वेकावू मनोविकारोंसे अधिक तेरी उन्नतिमें वाधक और तुझे दुख देनेवाली और कौन चीज है? जव कोई आदमी किसी वस्तुकी अनुचित वांछा करता है या उसके प्रति अपवित्र आग्रह करता है तो उसका हृदय अशान्त हो जाता है। वासनाओंकी विजयसे ही हृदय को शान्ति मिलती है, न कि उसके अधीन होने से।

अपनेको वहुत वड़ा बुद्धिमान न समझ लो, वल्कि अपने अज्ञान और अपनी छोटाईको स्वीकर करते रहो। हम सव अत्यन्त निर्वल प्राणी हैं, किन्तु तुम अपनेसे अधिक निर्बल और किसीको न समझो।

भक्त और भगवान्के वास्तविक स्वरूपका चित्र

"भक्त और भगवान्का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। कोई लौकिक, कोई अलौकिक सम्बन्ध उसकी स्नेहमयता-उसकी प्रवणताको स्पर्श नहीं कर सकता। उसकी गुरुता ही भूखे नंगे भक्तका आश्रयहै, भक्त उसके सुअंकमें ही परमानन्दकी अनुभूति करता है।"

भक्त और भगवान्

श्रीचण्डीप्रसाद बहुगुणा व्याकरणाचार्य

भगवान् साध्य हैं और भक्ति साधन। भक्त-साधककी परम्परा ही सामीप्य मुक्ति—अर्थात् इस दृष्ट प्रपंचके आधिभौतिक त्रिविध तापोंकी निवृत्तिकी द्योतिका है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भक्तिके स्वरूपकी व्याख्या करते हुए भगवान्श्रीकृष्णने कहाहै—

मय्यावेश्यमनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

अतिशय श्रद्धासे युक्त तदाकार चित्त होकर जो भक्त निरन्तर उन भक्त-वत्सल प्रभुकी सेवामें लगा रहता है, वही श्रेष्ठभक्तहै। जो भक्त परमप्रभुके सुयशका श्रवण, कीर्तन, स्मरण और उनके चरणकमलोंका सेवन करता हुआ, क्रमशः प्रभुकेसाथ दास्य और सख्य संबंध स्थापित कर अन्तमें नवधा भक्तिकी चरमस्थिति-तादात्म्य या आत्मनिवेदनकी स्थितिको प्राप्त करतेहैं, वे उन्हें अत्यन्त प्रियहैं। यद्यपि ये भावुकभक्त मनसा, वाचा, कर्मणा परमप्रभुके हो जाते हैं, तथापि उन्हें इहलौकिक पारमार्थिक कार्योंका तिरस्कार करनेकी अपेक्षा नहीं रहती। क्योंकि भगवान्ने—

कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
एवं
यज्ञो दानं तपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे।
यज्ञो दानं तपः कर्म पावनानि मनीषिणाम्।

कह कर दृढ़ कर्तव्यमार्गका निर्देश कियाहै। अपने जीवन-कार्यों-दायित्वोंका भली-भांति निर्वाह करते हुए भगवल्लीन होनाही सच्चा भक्तियोग है।

किन्तु भक्तिके इस स्तरपर मनुष्य तबतक नहीं पहुँच सकता, जबतककि श्रीकृष्णके शब्दोंमें वह—

समः शत्रौ च मित्रेच तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्ण सुखदुःखेषुसमः संगविवर्जितः ।।

नहीं होजाता। क्योंकि संगसे काम क्रोधादि दोषोंका उद्‌भव होताहै। कामक्रोधादिसे मनुष्यकी विवेकमयी, सदासद्‌विवेचनी बुद्धि नष्ट हो जाती है। वह सदैवकेलिये मनुष्यत्वका सार खोकर जन्ममरणके चक्रव्यूहसे निकलनेमें असमर्थ रहता है। अतः निःसंगसेही दैवी गुणोंका उदय होताहै। निःसंगसे ही तुलसीदास तुलसी बनगये, जिनकी काव्यमयी सुगन्ध से भगवान् तृप्त होतेहैं। निःसंगसे ही सूरदास प्रभुकी हृद्‌तन्त्रीके स्वर बन गये और निःसंगसे ही मीरा भक्तिकी सरितामें सराबोर होकर भगवान्‌के चरणकमलोंकी मकरन्द बन गईं।

गोपाङ्गनाओंकी भक्ति भक्तजनोंकेलिए आदर्श है, क्योंकि भगवान् स्वयं उनको सर्वश्रेष्ठभक्त एवं अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय बतलातेहैं। वास्तवमें गोपबालाओंकी तल्लीनता अद्‌भुत है—

गतिस्मित प्रेक्षण भाषणादिषु
प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।

वे भगवान्‌की गति, हास्य तथा देखने, कहनेमें भगवान् कृष्णचन्द्रके प्रतिबिम्ब स्वरूप ही बन गईं थीं। श्रीमद्‌भागवत्‌के दशम्‌स्कन्धमें यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणोंकी पत्नियों में भक्तिका सच्चारूप देखनेसे भक्तकी मीमांसाही पूर्ण होजाती है। वे कहती हैं कि—

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं-
सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ।
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं-
केशैर्निवोढुमतिलक्ष्य समस्त बन्धून् ।

"विभो! सब कुछ छोड़कर हम आपकी शरणमें आईहैं और आप हमें लौट जाने की आज्ञा दे रहे हैं, इससे श्रुति प्रतिपाद्य शरणागतवत्सलता कैसे यथार्थ सिद्ध होगी? अतः हमें न छोड़ियेगा।" किन्तु उधर ज्ञान-गरिमासे पूर्ण होने पर भी वेदज्ञ ब्राह्मण भगवान्‌को न पहिचान सके, किन्तु उनकी अबोध सहचरियाँ भक्तिकी तीव्रतासे भगवान्‌को पहिचान गईं। सत्यही है भक्तिका प्रभाव ज्ञान आदिसे कहीं ऊँचाहै।

भक्तिगाथाके इसी प्रसंगमें भगवान्‌के स्वरूप और निवासके सम्बन्धमें भी विचार करना आवश्यक है। भगवान्‌का स्वरूप—

"योऽनन्त शक्तिर्भगवाननन्तो, महद्गुणत्वात् यमनन्तमाहुः।

जिसकी शक्ति अथाह है, जो एकरस, आदि अन्त से रहित, सम्पूर्ण गुणागार, स्थूल-सूक्ष्म-चराचर जगत्का निर्माता-नियन्ता, सगुण निर्गुण, न्याय, धर्म, सत् चित् आनन्द घन आदि उपाधियोंसे विशिष्ट तथा निर्लेप भी है, वही आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण जाग्रति-स्वप्न, सुपुप्ति अवस्थाओंके भोक्ता, द्रष्टा और सत, रज, तम वृत्तिवाली श्रोत्रादि इन्द्रियोंके संचालक एवं नियन्ता माने जाते हैं। इनका निवास भक्तोंका हृदय है। इस संबंधमें वे स्वयं मायाजयी, ब्रह्मतत्ववित् नारदजीके पूछने पर कहते हैं कि—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृद्धयेन च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

अर्थात् न तो मैं अपने प्रियनिवास वैकुण्ठमें रहताहूँ, न योगियोंके हृदयमेंही मेरी नित्य स्थिति है, अपितु जहाँ मेरे परम भक्त मेरे यशका मधुरगायन करतेहैं, मैं वहीं रहता हूँ।' जैसे कविका हृदय कविता है, वैसेही भक्तका हृदय भक्ति है एवं भक्तिसे भगवान्का सायुज्य है—ये एक दूसरे से पृथक् नहीं किये जासकते।

श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें व्यासजीने भक्ति, ज्ञान, वैराग्यके उपाख्यानमें स्पष्ट बता दिया है कि ज्ञान वैराग्यकी जननी भक्तिहीहै। भक्तिका उदय भगवत्कृपा और सत्संग से ही होता है। पुनः भक्तिसे आत्मशान्तिका उत्तरोत्तर विकास होता है। तभीतो जब वेदव्यासजीको सत्रह पुराणोंकी रचना करकेभी आत्मसंतोष नहीं हुआ तो तत्वविमर्शी नारदजीके उपदेशके अनुसार भक्तिके परमसागर, 'रसमालय' भागवतकी रचना की, जिसमें ज्ञानवैराग्यके साथ भक्तिकी मीमांसाकी गई है। 'कृष्णास्तु भगवान् स्वयम्' की समस्त सगुण रसमयी लीलाओंका मधुरगायन करते हुए कृष्णद्वैपायनने परब्रह्मका सच्चा चित्रण भक्तजनोंके कल्याणार्थ कर आत्मशान्ति प्राप्तकी।

—०—

पर-निन्दा

परनिन्दा न करो। परनिन्दा मत सुनो। जहाँ पर निन्दा होती हो, वहाँ मत बैठो। दूसरेका दोष कभी मत देखो। अपने दोषोंको सदा ही देखो। अपने भीतर छिपे हुए दोषोंको जो खोज-खोज कर देखता है, उसमें परनिन्दा करनेकी प्रवृति नहीं होती, दूसरेका दोष देखनेकी इच्छा नहीं होती।

परनिन्दा सर्वथा त्याग करने योग्य है। प्रत्येकमें कुछ न कुछ गुण है। दोषके अंश को छोड़ कर गुणका अंश ग्रहण करो। इससे हृदय परिशुद्ध होगा। निन्दनीय विषयको ग्रहण करने और उसकी आलोचना करनेसे आत्मा अत्यन्त मलिन हो जाती है।

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी

जीवन, समाज और राष्ट्रके कल्याणके
मूलमें अन्तर्निहित सत्यका उद्घाटन

"जीवन, समाज और राष्ट्रकी तरणी धर्मसे ही चल सकती है। धर्म क्या है? धर्म है वह, जिससे कल्याण होता हो। फिर हम 'धर्म' से निरपेक्ष रहकर कैसे कल्याणकी आशा रख सकते हैं? हम भलेही धर्मको छोड़कर चलें, पर सच मानिये हम धर्मसे आवृत हैं - हमारा असन्तोष, हमारा दैन्य, हमारी जीवन-विफलतायें इसीलिए हैं कि हमने अपनेको धर्मसे निरपेक्ष मान लिया है।"

क्या नैतिकता डरावनी है ?

श्रीहरिभाऊ उपाध्याय

जब मनुष्यने विवाह करके घर बसाया तो एकसे दो और दो से चार हुए। घरके बाद परिवार और समाज बना। जब घर बना तो यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि घरके लोग एक दूसरेके साथ किस तरह रहें? कैसे वर्तें? इसके हलस्वरूप कुछ नियम उन्हें बनाने पड़े। जैसे एक दूसरेके साथ ईमानदारी से रहेंगे, एक दूसरेको सतायेंगे नहीं, परस्पर मिलजुलकर शान्तिके साथ रहेंगे, आदि-आदि। ये नियमही जिसे हम 'नैतिकता' कहते हैं उसकी बुनियाद हैं। ये बहुत कुछ—

आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत् ।।
इस सिद्धान्तके आधार पर बनाये गये होने चाहिये ।।
प्रत्येक मनुष्यके मनमें तीन अदम्य प्रेरणायें उठती हैं।

१—मैं जीवित रहूँ, मेरे अस्तित्व पर आँच न आये, २—मैं स्वतन्त्र रहूँ, कोई मुझे दबाने न पाये, ३—मैं सुख से रहूँ—कोई मुझे दुःख न पहुँचाये। इन प्रेरणाओंका परीक्षण करकेही उसने यह सोचा होगा कि मैं १—किसीके अस्तित्वको न मिटाऊँ, २—मैं किसीकी स्वतन्त्रतामें दखल न दूँ, ३—मैं किसी के सुखमें बाधा न डालूँ।

इन और इन जैसे दूसरे नियमोंके आधारपर मानव जीवन, समाज जीवन, राष्ट्र जीवन टिका हुआ है और प्रगति तथा विकासके पथपर आगे बढ़ता जाता है। इन्हींको "स्वतन्त्रता", 'समता' और न्याय'के नाम से कहा जाता है।

क्या ये नियम, मर्यादा अपनेआपमें बुरे हैं ? इनकी आवश्यकता मनुष्य, समाज, राष्ट्र के लिये नहीं है ? यदि ये सब अनिवार्य और शुभ हैं, तो फिर 'नैतिकता' के प्रति जो विद्रोहकी भावना आज जोर पकड़ती दिखाई देती है, वह क्यों ? और क्या वह समर्थनीय तथा प्रोत्साहनीय है ?

ऐसा मालूम होता है कि कुछ कुरीतियों, रूढ़ियों, गलत परम्पराओंको नैतिकता' मान लिया गया है और इस भ्रमसे 'नैतिकता' के प्रति विरोध किया जा रहा है। कुछ लोगों को 'पाप-पुण्य' नामसे चिढ़ हो गई है, धर्म और ईश्वर, आत्मा शब्दसे उनका दिमाग गरम हो जाता है। तो आप धर्म, ईश्वर, आत्मा सबको अभी एक तरफ रख दीजिये। मनुष्य, उसका घर, मानव-समाजको तो आप मानते हैं न ? ये चलते रहें, इनकी उन्नति हो—यह तो आप चाहते हैं न ? फिर आप ही बताइये, पूर्वोक्त कुछ नियमोंके बिना आप अपना घर, समाज, राष्ट्र कैसे चलायेंगे ? याद रखिये कि आपको स्वतन्त्रता, समता, न्याय आदिके जो नागरिक अधिकार दिये गये हैं वे दूसरोंको भी दिये गये हैं। आपकी स्वतन्त्रताका अर्थही यह है कि आप दूसरोंकी स्वतन्त्रतामें दखल नहीं देंगे, दूसरोंकी समतामें बाधा नहीं डालेंगे—दूसरोंके साथ अन्याय नहीं करेंगे—आदि। पर कई बार आप अपनी स्वतन्त्रता, समता और न्याय पर तो बड़ा जोर देते हैं, परन्तु दूसरोंकी स्वतन्त्रता, समता, न्यायका उतना ख्याल नहीं करते। आजकल जितने उपद्रव, हिंसा-काण्ड, मार-काट हो रहे हैं—समाज और राष्ट्रकी नियम-मर्यादा छोड़कर उच्छृङ्खलता, आक्रोश, नग्नताके प्रदर्शन हो रहे हैं, वे इन्हीं मूलभूत सिद्धान्तोंकी अवगणना, या एक पक्षीय समर्थनके कारण हैं।

मनुष्य समाजमें स्वार्थ, परार्थ दोनों साथ-साथ चलते हैं। दोनोंमें एक सन्तुलन रहना चाहिये। यदि स्वार्थ पर अधिक ध्यान दिया गया तो परार्थकी उपेक्षा हो जायगी और 'पर' उसे सहन न करके विरोध और विद्रोह करेंगे। यदि परमार्थपर अधिक जोर दिया जाय तो जो 'स्व' के घेरेमें आ जाते हैं, वे हलचल मचावेंगे। अतः जो स्वार्थ और परार्थ दोनोंमें अच्छा सन्तुलन बनाये रखता है, वह सफल गृहस्थ या नागरिक माना जाता है। ऐसा सन्तुलन रखनेवाला समाज स्थिर और सुखी रह सकता है।

इस सन्तुलनसे ऊँची एक अवस्था आती है 'त्यागकी'। जो स्वेच्छापूर्वक अपनी सुख-सामग्री, सुखाधिकारको छोड़ता है, वह दूसरोंका हित-साधन करता है। जो कुछ वह छोड़ता है, उसका लाभ दूसरोंको मिलता है। अतः वह घर और समाजमें बड़ा ऊँचा माना जाता है।

यह 'स्व' का भाव मनुष्यके मनमें जब क्षीण होता जाता है और 'पर' का हित प्रमुखतासे रहने लगता है, तब यह उसका प्रयाण भौतिकता—भौतिक सुख से 'परे' की ओर है। यह कोई हीन, बुरी, त्याज्य अवस्था नहीं है—मानवके विकासकी ऊंची मंजिल है। यह तभी फलती फूलती है, जब स्वेच्छासे, प्रसन्नतासे, मनुष्य 'स्व' से परे उठता हो—

ज्यों-ज्यों उसका 'स्व' क्षीण होता है, त्यों-त्यों उसकी प्रसन्नता वढ़ती है। इस तरह व्यष्टि जब समष्टिमें डूब जाता है, वही अवस्था आध्यात्मिक प्रदेशमें पहुँचनेकी सूचक है। अपने 'स्व' को सृष्टिके तमाम भौतिक पदार्थोंमें एकाग्र करने तक तो वह सृष्टि-प्रकृतिके भीतरही रहता है। निरे स्वार्थ-साधुका तो घर और समाजमें कोई स्थान नहीं हो सकता—स्वार्थ, परार्थका सन्तुलन रखनेवाला अच्छा नागरिक होता है। परन्तु परार्थके खातिर-समाज या समष्टिके हितमें अपने सुख-साधन या अधिकारको छोड़नेवाला व्यक्ति आदर्श होगा।

अब ऐसे व्यक्तिभी हैं, जो यह मानते हैं कि इस सृष्टिके मूलमें या इसमें ओत-प्रोत एक चेतन शक्ति या तत्व है। उन्हें इस आदर्शकी सीमासे भी सन्तोष नहीं हो सकता। वे और आगे वढ़ना चाहते हैं, वे अपनेको सृष्टि-गत, प्रकृतिस्थ, तमाम सूक्ष्म भेद-भावोंके भी परे जाने या रहनेकी साधना करते हैं। यह आध्यात्मिक जगत् है। जिन्हें इसमें आस्था नहीं है, वे आदर्श नागरिक तकभी पहुँचनेकी साधना करें, तो वस है।

'पाप' पुण्य कोई डरावने नाम नहीं हैं। सुकृति को पुण्य और दुष्कृतिको पाप कहा गया है। जिसे हम संविधानकी भाषामें 'अपराध' कहते हैं, वही सामाजिक भाषा में पाप कहा जाता है। जो नियम हमें समाजको टिकाने और उसे आगे बढ़ानेमें सहायक होते हैं, उन्हें हम नीति, सदाचार कहते हैं और जो हमें चेतन जगत् में पहुँचने या स्थित करनेमें सहायक होते हैं, उन्हें हमने 'धर्म' कहा है। नैतिक नियमही आगे चलकर 'धर्म' संज्ञा ग्रहण कर लेते हैं। यह केवल साधना या विकास का प्रश्न है। हम चाहे घर में हों, चाहे समाज या राष्ट्रमें हों, हमें कुछ नियम—मर्यादा रखने ही पड़ेंगे। इनमें कुछ नियम ऐसे हो सकते हैं, जो सब समय काम देंगे, कुछ ऐसे हो सकते हैं जिन्हें हम अवस्थानुसार बदल सकते हैं और वदलना चाहिये। जो नियम अविचल हैं या जिन्हें हम व्यक्ति, घर, समाजकेलिए आधाररूप मानते हैं, उन्हें हम 'नैतिक' कहते हैं और जिन्हें स्थितिके अनुसार बदला जा सकता है, वे साधारणतः सामाजिक या शासनिक या वैधानिक कहलाते हैं। मैं समझता हूँ जो सज्जन 'नैतिक', 'पाप-पुण्य' शब्दों से चिढ़ते हैं, उन्हें इस लेख से विचारकी कुछ सामग्री मिलेगी।

हृदय मन्दिर

पहले हृदय-मन्दिरमें माधवकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए, पहले भगवत् प्राप्ति कर लेनी चाहिये। यह न करके केवल शंख बजानेसे क्या होगा ! भगवत्-प्राप्ति होनेकेपहले उस मन्दिर की सब गन्दगी निकाल डालनी चाहिये। पापरूपी मल धो डालना चाहिये। इन्द्रियोंकी उत्पन्नकी हुई विषयासक्तिको दूर कर देना चाहिये अर्थात् पहले चित्तको शुद्ध करना चाहिये।

—०—

ओंकारकी महत्ता, जप, साधना-
आराधनाका महत्त्वपूर्ण निरूपण

"ओंकार" जीवन और जगत्का मूल है। 'ओंकार' की साधना और जप से ही उस परम दिव्य प्रकाशकी प्राप्ति होती है, जिससे 'जीवन' और जगत्की रहस्यात्मक गुत्थियाँ सुलझती हैं। उपनिषदों के पृष्ठ 'ओंकार' की महत्ता से भरे हैं। योगियोंका एक मात्र अवलंब 'ओंकार ही है।"

ओंकारका महत्त्व

डा० श्रीमधुकर भट्ट एम-ए-पी. एच. डी.

ओंकार शब्द अपने आपमें परब्रह्म परमात्माका स्वरूप है। "ॐ" का नामांतर प्रणव है। प्रणव शब्द का अर्थ है—"प्रकर्षेण नूयते स्तूयते अनेन इति नौति स्तौति इति वा प्रणवः"। ब्रह्मके साथ इसका संबंध नित्य और सनातन है। कहा जाता है कि सृष्टिके आरंभमें सर्वप्रथम ओंकार रूपी प्रणवका ही स्फुरण होता है। इसके पश्चात् उपनिषदों, वेदों आदिके करोड़ों मंत्रोंका आविर्भाव होता है। इस प्रकार ईश्वरके वाचक इस "ॐ" का ब्रह्मके साथ वाच्य-वाचक संबंध अनादि कालसे चला आ रहा है। यह सर्व विदित है कि किसी भी देवताकी स्तुति, जप या आराधनाके पहले प्रणव लगाया जाता है, चाहे वे शुद्ध माया जगत्में कार्य करनेवाले देवता हों अथवा अशुद्ध या मलिन माया जगत्में कार्य करके, मायाके ऊपर विद्यमान रहकर, मायिक सृष्टिपर नियंत्रण करनेवाले देवता हों। विशेष रूपसे भारतीय धर्मसाधनाके उस क्षेत्रमें, जहाँ ब्रह्म-प्राप्तिही साधकका अभीष्टहै, प्रणवोपासना मुख्य है। ओंकारको ज्ञानप्राप्ति और ब्रह्म-साधनाकेलिए सबसे महत्त्वपूर्ण साध्य स्वीकार किया गया है।

"कठोपनिषद्" ने ओंकारके महत्त्वका व्याख्यान करते हुए कहा है, "आत्माको अधर अरणि और ओंकारको उत्तर अरणि बनाकर मंथनकी तरह अभ्यास करनेसे दिव्य चक्षुज्ञान-ज्योतिका स्फुरण होता है। इसज्योतिके आलोकसे आत्मज्ञान होताहै और तब आत्म तत्त्वका दर्शन मिलता है।

"मुंडकोपनिषद्" ने ब्रह्मप्राप्तिकेलिए 'ॐ' को सर्व प्रमुख साधन बताया है—

"प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्य मुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो-भवेत् ।।

इतना ही नहीं, मांडूकोपनिषद् में भूत, भविष्य, वर्तमान-त्रिकाल ओंकारात्मक ही कहा गया है। इस उपनिषद्ने त्रिकालसे अतीत तत्वको भी ओंकारही स्वीकार किया है। आत्मा अक्षरकी दृष्टिसे ओंकार है और मात्राकी दृष्टिसे अ, उ और म रूप है। चौथे चरणमें मात्राके अभावके कारण साधारणतः अतीत तथा सिद्धांततः शून्य (अद्वैत) है। कहनेका तात्पर्य यह है कि "ॐ" स्वयं ब्रह्म है।

ओंकारकी महिमाका गान वैदिक साहित्यके अतिरिक्त धर्मशास्त्र, पुराण और आधुनिक साहित्यमें भी किया गया है। कालान्तरमें उत्पन्न जैन और बौद्ध संप्रदायोंमें भी ओंकार के प्रति अटल भक्ति है। गोरखपंथियों, नाथों, सिद्धों और अन्य प्रचलित धार्मिक संप्रदायोंमें भी ओंकारके प्रति श्रद्धा है।

भारतीय संस्कृतिके मेरुदण्ड श्रीमद्भगवत्गीताने भी ओंकारका व्याख्यान किया है। परमपुरुष श्रीकृष्णने स्वयं "गिरामस्म्येकमक्षरम्" कहकर अपनेको ओंकार स्वरूप बताया है। श्रीमद्भगवत्गीताके दशवें अध्यायके २५ वें श्लोक में भगवान् ने "ॐ" में अपनेको स्थापित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीतामें भी ओंकारको एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है।

ओंकारकी साधना बड़ी दुरुह है। भारतीय आगमोंमें इस साधनाका बड़ा विशद विवेचन किया गया है। ओंकारके कुल १२ अवयव हैं—अ, उ, म, बिंदु, अर्धचंद्र, रोधिनी, नाद, नादांत, शक्ति, व्यापिनी, समना और उन्मना। इन १२ अवयवोंमें सृष्टि, स्थिति और संहार तीनोंका समष्टिरूप है। इसीलिए 'ॐ' में ब्रह्मा (सृष्टि), विष्णु (स्थिति) और शिव (संहार) तीनोंका निवास है। उपनिषदों और आगमोंमें स्पष्ट रूपसे स्वीकार किया गया है कि 'ॐ' की सिद्धि ही योगीका अभीष्ट है।

कुछ साधना-ग्रन्थोंने ओंकारको रूपकके रूपमें स्वीकार किया है। उनके अनुसार ओंकारमें ध्वनित अकार, उकार और मकार जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म और कारण अवस्थाओं के वाचक हैं। 'बिंदु' तुरीय दशाका द्योतक है। बिंदुको मनका भी एक रूप स्वीकार किया गया हैं। 'समना' इस साधनाकी] चरमोत्कर्षकी भूमि मानी गई है, जहाँ पर बिंदु (मन) को स्थिर कर लेनेके पश्चात् किसी योगी-योगीश्वरोंकेलिये उसके आगे बढ़ना संभव नहीं होता। क्योंकि मात्राको विभाजित करते-करते मन अधिकाधिक सूक्ष्म होता जाता है और धीरे-धीरे साधक उन्मना होकर ब्रह्ममें लीन हो जाता है। इस

साधककी उन्मनी स्थिति कहते हैं। साधनाके इस स्थलपर ज्योतिस्वरूप परब्रह्म परमात्मा अविरल प्रकाशमान रहता है।

साधनाके विभिन्न संप्रदायोंने ओंकार-साधनाको भिन्न-भिन्न प्रक्रियाओंसे साधनेका प्रयत्न किया है। ओंकारके प्रति अटूट श्रद्धाके कारण विविध साधना-प्रक्रियाओंका भी उदय भिन्न-भिन्न संप्रदायोंमें हुआ और उसके महत्त्वका विशद व्याख्यान किया गया। कालांतरमें जन्मे योगी संप्रदायमें प्रणवका महत्त्वपूर्ण स्थान है। योगी संप्रदायवालों ने प्रणवको अपने जीवनके अंग-रूप में स्वीकार किया है।

योगी संप्रदायमें स्वच्छन्द तंत्रके अनुसार ओंकार-साधनाका क्रम प्रचलित है। योगियोंने ओंकारके विविध अवयवोंको अपने ढंगसे देखकर अपनी मौलिक विचारधाराओं को स्थापित करते हुए साधना की है। यहाँ अधिक चर्चा न करके इतना ही संकेत दे देना पर्याप्त है कि ओंकारके विविध अवयवोंको योगियोंने किसका प्रतीक स्वीकार किया और उनकी साधनाका क्रमिक विकास क्या है? योगियों ने अपनी व्यक्तिगत साधनाके लिए ओंकारके विभिन्न अवयवों पर जो तंत्र बनाये और उन पर सिद्धि प्राप्त की, वह इस प्रकार है:—

ॐ—अवयव	—	प्रतीक
'अ'	—	समग्र स्थूल जगत्
मकार	—	कारण जगत्
विंदु	—	अभेद ज्ञान
नाद	—	अशेष वाचकोंके विमर्शन
'अ' 'उ' 'म'	—	ब्रह्मा, विष्णु, महेश
समना	—	मनन-मात्र-रूप-अनुभव
मन्मना	—	परमपद या परमशिवकी प्राप्ति

इस प्रकार योगी संप्रदायमें क्रमसे ओंकारके सभी अवयवोंका अतिक्रमण करके साधक उन्मनी स्थितिमें पहुँचकर परब्रह्मकी प्राप्ति करता है। ओंकार एकाक्षर ब्रह्मरूप जगद्व्यापी स्वरूप है, जिसकी सिद्धि ही ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन है। भारतीय धर्म-सम्प्रदायोंमें 'ॐ' के महत्त्वको सभी धर्माचार्योंने स्वीकार किया है। विविध रूपसे ओंकारकी साधनाभी की गयी है।

इससे स्पष्ट है कि भारतीय धर्म-साधनामें ओंकार एवं उसकी साधनाका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। भगवान् परमपुरुष श्रीकृष्णने स्वयं कहा है:—

"ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदान तपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

ब्रजभूमिके एक पौराणिक सुपावन प्राचीन स्थलका चित्र

"मन्दिर बहुत ही ऊँचे टीलेपर बना है। परकोटा पक्का और सुदृढ़ है। यमुनाकी बाढ़का पानी भी मन्दिर तक नहीं पहुँच पाता, ऊपर ही भव्य कुँआ और हनुमानजीका भी एक मन्दिर है। मंदिर में पहुँचनेपर अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होती है। चारों ओर शान्त वातावरण, श्री यमुनाजीकी लहरोंका आकर्षण ! बरबस मन खिंच जाता है।"

दुर्वासा मुनिका आश्रम

श्रीउमाशंकर दीक्षित एम. ए.

शरद् पूर्णिमाकी पावन वेला ! चन्द्रमाने अपनी धवल दुग्धके समान सफेद चाँदनीसे पृथ्वीपर मानों सफेद चाँदनी ही बिछादी हो। चम्पा, जुही, बेला, चमेली आदिकी सुगन्धने वातावरणको विमुग्ध कर रखा था। जमुना तटपर खड़े कदम्बोंके मध्यसे पुष्पधन्वा कामदेव मांनों अपने अचूक निशानेकी बाट ही जोह रहा था। ललित कालिन्दीकी कलकल ध्वनिसे प्रिया प्रियतमके नूपुरोंकी रुनझुनका भान हो रहा था। चारों ओर शान्त वातावरण था। आकाश स्वच्छ और निर्मल था। भौंरों और मंजीरोंकी ध्वनि रासविहारीके तालको अधिक मुखरित करती हुई सारंगी और मजीराका साज पैदा कराती थी। कदम्बोंपर बैठे मयूर अपने प्यारेको मयूरपुच्छका किरीट धारण किये हुए निहारकर पागलसे उन्हें पिया पिया के मधुर स्वरोंमें पुकार उठते थे। ऐसे ही मादक और मनोहारी वातावरणमें उस रास-विहारीने सोलह सहस्र श्रुतिरूपा गोपबालिकाओंके साथ महारास रचाया। सभी गोपियाँ अपनी सुधि-बुधि भूल चुकी थीं। मदनमोहनका वह महारास भुवन मोहन था। गोपांगनायें भगवान्के अनन्य प्रेम रससे सराबोर होगईं। आज न जाने उस बांकेविहारीने कौनसी मोहिनी डाल दी है कि गोपियाँ महाराससे तृप्त नहीं हो पा रही हैं। चर और अचर उस लीलाविहारीकी लीलामें ऐसे तल्लीन थे कि उन्हें होश हीं नहीं था।

श्यामसुन्दरके साथ मनमोहक वातावरणमें लीला और महारास करती हुई गोपियोंके मनमें सन्देह पैदा हो उठा कि "हमारे साथ रास करनेवाले श्यामसुन्दर योगेश्वर और परब्रह्म किस प्रकार हो सकते हैं"? घट-घटका भी उस मनमोहनसे भला क्या छिपा है ? गोपियोके मनका सन्देह उसके मनमें उतर ही तो गया। बस, फिर क्या ? सन्देह और

दर्प तो उन्होंने किसीका रहने ही नहीं दिया,ब्रह्माका भी नहीं । अभी अभी महारासमें ही,उन्होंने कामदेवके दर्पको भी मथा है तो फिर इन भोलीभाली नारियोंका सन्देह निवारण न किया जाय, यह कैसे सम्भव हो सकता है !

मदनमोहन बोल ही तो उठे—"हे गोपियो ! चलो आज श्रीजमुनाजीके पल्ली-पार चलें । दुर्वासा ऋषि तपस्या कर रहे हैं । वे केवल दूर्वा (दूब-घास) का ही अशन-भोजन करते हैं, इसीलिए उन्हें दुर्वासा कहते हैं । परन्तु आज तुम सब उनके लिये अनेक प्रकारके पकवान और व्यंजन लेकर चलो और उन्हें भोजन कराओ ।"

गोपियाँ भी कब चूकने वाली थीं । चट बोल उठीं—

'महाराज, अभी अभी तो आपने अपने श्रीमुखसे कह्यो है कि दुर्वासाजी तो दूब खायौ करें हैं । फिर वे पकमान कैसे खामिगे और बु अकेले सोलह हजार वैयरनके भोजन कूँ एक संग कैसे खाइ सकें हैं ?"

श्यामसुन्दरने अपनी रस-सिक्त वाणी से कहा—

'हे गोपियो, आज तुम्हें यही तो दिखानो है कि सामर्थवान पुरुष सब कछू कर सकै हैं, बाकूँ कछू दोष नहीं लगै हैं ।"

बस फिर क्या था,योगमायाकी शक्तिसे छत्तीसों प्रकारके व्यंजन और पकवान बनकर तैयार होगये । गोपियाँ सभी प्रकारके पदार्थोंको डलाओंमें भर-भरकर श्यामसुन्दरके साथ दुर्वासाके दर्शनार्थ चल पड़ीं । तभी श्यामसुन्दर एक टूटी सी नाव ले आये । नावमें सबको बिठा कर उस पारकेलिए चल दिये । बीच यमुनामें नावमें पानी भरने लगा । गोपियाँ भयभीत होकर एक स्वरसे चिल्ला पड़ीं"—श्यामसुन्दर हमें बचाओ । आप ही हमारी शरण हैं, हमें पार लगाओ ।"

बस फिर क्या था ? अहं रहित, उस आर्तनादसे जगन्नियन्ता रासविहारीका काम बन गया । उन्होंने कहा कि इस छोटी सी नावसे इतनी नारियोंका भार वहन नहीं हो पा रहा है । अतः बोझको कम करनेके लिए तुम सब अपने-अपने आभूषण उतार कर फेंक दो तो नाव हलकी हो जायगी । गोपियोंने शीघ्र ही आज्ञाका पालन किया । पर नावमें पानी भरना इससे भी नहीं रुका । श्यामसुन्दर कृष्णने फिर कहा, अच्छा तुम सब अपने-अपने हाथ ऊपरको उठाकर यह कहो कि यदि श्रीकृष्ण अखण्ड ब्रह्मचारी और योगेश्वर हों तो नावमें पानी रुक जाय । गोपियोंने शुद्ध मनसे जब यह कहा—सचमुच नावमें पानीका भरना रुक गया ।

नाव यमुनाके उस पार जा लगी । श्रीकृष्ण सबके साथ दुर्वासाके आश्रममें पहुँचे । दुर्वासाके समक्ष भोजनके सभी पदार्थ रख दिए गए । दुर्वासाने देखते ही देखते सारा भोजन खा डाला । दुर्वासाके दर्शनसे गोपियोंके मनका सन्देह नष्ट होगया । वे इस तत्वको समझ

गई कि सामर्थशाली व्यक्तिको कोई दोष नहीं लगता है। यद्यपि दुर्वासा तपस्यामें लीन रहनेके कारण उस समय दूब ही खाते थे, परन्तु गोपियोंके सन्देह निवारणकेलिए उन्होंने भोजनके सभी पदार्थोंको देखते ही देखते खा डाला। गोपियोंने श्यामसुन्दरके वास्तविक रूप को भी जान लिया कि श्यामसुन्दर सामान्य पुरुष नहीं हैं। वास्तवमें वे लीलाविहारी, पूर्ण योगेश्वर, परब्रह्म परमात्मा हैं। रासलीला तो उन मदनमोहनकी लीला मात्र है। गोपियों ने दुर्वासाका अभिनन्दन किया और रासेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति की। साथ ही उन्होंने अपने सन्देहके लिए श्रीकृष्णसे क्षमा याचना भी की।

दुर्वासा मुनिका वहं आश्रम आज भी मथुराके उस पार वर्तमान है। आश्रममें दुर्वासा ऋषिकी सुन्दर मूर्ति है। साथ ही कृष्ण भगवान्‌की मनोहर झाँकी भी। मन्दिर बहुत ही ऊँचे टीले पर बना है। परकोटा पक्का और सुदृढ़ है। यमुनाकी बाढ़का पानी भी मन्दिर तक नही पहुँच पाता। ऊपरही कुआँ और हनुमानजीका भी एक मन्दिर है। मन्दिर में ऊपर पहुँचने पर अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होती है। चारों ओर शान्त वातावरण, श्रीयमुनाकी लहरोंका आकर्षण! बरबस मन खिच जाता है। माघके महीनेमें दर्शनों के लिए बड़ी भीड़ होती है। दुकानें भी खूब आती हैं। खेलखिलौने और गुब्बारोंके साथ ही साथ अमरुद, वेर, और चाटकी बहार भी रहती है। आध्यात्म और लौकिक दोनोंका योग मनको हर लेता है।

कालकी विकरालता

मन्दिर महल विलायत है गज,
ऊँट दमामा दिना इक दो हैं।
तातहु मात तिया सुत बांधव,
देख (धुँ पामर होत विछोहै ॥
झूंठ प्रपंच सूं राचि रह्यो सठ!
काठ की पूतरि ज्यूं कपि मोहै।
मेरि हि मेरि कहै नित सुन्दर,
आँखि लगै कूं को है ॥
कै यह देह जराइ के छार,
किया कि किया कि किया कि किया है।
कै यह देह जमीं महिं गाड़ि,
दिया कि दिया कि दिया कि दिया है ॥
कै यह देह रहै दिन चारि,
जिया कि जिया कि जिया कि जिया है।
सुन्दर काल अचानक आइ,
लिया कि लिया कि लिया कि लिया है ॥

सन्त सुन्दरदास

मनके विकार-ईर्षाका एक प्रभावपूर्ण चित्र

"मनुष्य समझता है कि पर-अस्तुति से ही स्वप्रतिष्ठाका स्तम्भ खड़ा किया जा सकता है। पर परिणाम विपरीत होता है। मनुष्य ज्यों-ज्यों पर-अस्तुतिका मंत्र जपता है, उसकी स्व-प्रतिष्ठाका दीप मन्द होता जाता है। स्व-प्रतिष्ठा और आत्म-गौरवके अर्जनका एकही मार्ग है—"दूसरोंका आदर करो, दूसरोंके गौरवको अपना गौरव समझो।"

जीवनका यही मर्म है

श्रीकृष्णमुनि प्रभाकर

प्रवचकने एक बार अपने प्रवचनके बीच श्रोताओंको यह उपदेशात्मक कथा सुनायी—

एकबार दो भिक्षुक लालचवश किसी नगरमें एक धनिकके घर पहुँचे। मधुमय प्रभावती सुहावनी वेला थी। गगनमें किरणपाणि अभी अपनी कमलिनी-सी सुकुमार रश्मिओं की स्वर्णिम आभाको विस्तृति भी नहीं दे पाये थे कि धर्म स्वभावी गृहपति स्मरणानुष्ठान से विरत होकर अध्यात्म-कक्षसे निकला और तभी निलयमें भिक्षुओंका पदार्पण हुआ।

आगतोंका धनिक-परिवारने नमन-पूर्वक स्वागत-सत्कार किया और साथमें आतिथ्य स्वीकारनेका आवेदनभी। स्निग्ध और अनुकूल वातावरणकी गन्ध पाकर भिक्षुक उत्फुल्ल हो उठे और उनके भाव-विभोर हुये अन्तर्चित्तसे शत-शत आशिर्वचन-शुभकामनाओंके रूपमें फूट पड़े। बड़ी आवभगत हुई।

कार्यवश धनिक तो हाट चले गये और भिक्षुक स्नान-सन्ध्यामें लग गये।

निवृत्त होकर जब एक भिक्षुक बैठा, तो गृहपत्नीने श्रद्धा-पूर्वक चर्चा छेड़ी, आपके साथ जो दूसरे महात्मा आये हैं, वह तो बड़े तपस्वी और विद्वान् प्रतीत होते हैं।

दूसरेकी प्रशंसा करके अपनी मान्यताओंको कम करनेकी उदारता भला उनमें कहाँ! मुख-मण्डलको विकृत करके बुरी-सी ध्वनि निकालते हुये वह बोले, 'बड़ी भोली हो भगतिनि! कैसी बातें करती हो! ओ लण्ठ तो निरा बैल है, बैल। बैठने-उठनेका भी शऊर नहीं है उसे तो!'

कक्षके बाहर तीव्र चीत्कार हुआ, तो धनिक-पत्नी उठकर बाहर आ गयी। सम्भवतः बालकोंमें कलह ने उग्रता धारण करली थी। वातावरण जब सात्विक हुआ, तो वह पुनः भीतर आकर बैठ गयी।

इसी बीच पहलेवाले भिक्षुक उठकर कहीं बाहर चले गये और दूसरेने उनका स्थान ग्रहण कर लिया।

गृहपत्नी ने अपने वही भाव विनम्रता-पूर्वक दूसरे भिक्षुकके समक्ष प्रकट किये, तो अपनी प्रशंसाके पुल बाँधते हुये वह बड़े ही विचित्र स्वरोंमें बोला, न आचरणकी पवित्रता न शास्त्रका ज्ञान। ओ ढ़ोंगी तो निरा ढ़ोर है, गधेरा है!'

उत्तर सुनकर धनिकपत्नीतो स्तम्भित हुई सो हुई, पास बैठा वयस्क पुत्रभी इस वैपरीत्यसे चकित-विस्मित रह गया। महात्माओंमें पारस्परिक द्वेषकी गँदली भावनाओंकी सड़ांध पाकर उसका नूतन मस्तिष्क असन्तुलित हो उठा। उन्हें सीधा करनेका उसने तुरत निर्णय कर डाला। एक बहुतही उपयोगी योजना उसके चतुर मस्तिष्क में कौंध गयी, बिजली-सी।

दिनकरने अपनी उग्रता धारण करली, तो दूर कहीं घटिका-यन्त्र घनघना उठा।

भोजनका समय हुआ।

दोनों अतिथि-भिक्षुओंको सादर उच्चासनोंपर बिठलाकर धनिक-पुत्रने उनके सामने जो थाल परोसे, उनमेंसे एकमें तो भूसीथी, और, दूसरे में हरी-हरी दूब !!!

उपसंहारमें प्रवक्ताने तत्व-निरूपण किया—

'ईर्षालुओंकी गति ऐसीही होती है। पर-अस्तुतिसे स्व-प्रतिष्ठा अर्जित नहीं की जा सकती। पर-सम्मानही एक ऐसा अचूक साधन है, जिससे आत्मगौरवकी वृद्धि स्वतः हो जाती है। जो दूसरोंको उन्नत देखनेमें सन्तोप लब्ध नहीं कर पाता, वह स्वयंभी उन्नति के मार्गमें कभी सफल नहीं हो सकता। यही जीवनका मर्म है!'

०—०—०

मन भ्रमरसे

रे मन! द्रवायमाण सुवर्ण तथा सघन मेघ-समूहकी भाँति गौर-नील कांतिसे समग्र वृन्दावनको उद्‌भासित करनेवाले, नवीन मृदुल नील-पीत-पाटम्बरधारी निभृत निकुंज में विराजमान श्रीराधिका-कृष्णचन्द्रका तू स्मरण कर।

०—०—०

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानकी गतिविधियाँ

श्रीवंशीधर उपाध्याय

मथुरापुरी सदैवसेही भारतीय संस्कृतिका महान् केन्द्र रही है। इसने अपनी आध्यात्मिक और भौतिक सम्पत्तियोंसे विदेशियोंतकके मनको आकर्षित किया है। इस नगरी ने अबतक अगणित भक्तों एवं दार्शनिकोंको अपना शाश्वत सन्देश देकर आत्मानन्दकी अनुभूति कराई है।

इसी नगरीमें वह पावन स्थान है, जहाँ भाद्रपद कृष्ण अष्टमीकी अन्धकारमयी अर्द्धरात्रिको एक ऐसा प्रकाशपुंज प्रकट हुआ, जिसके अलौकिक आलोकसे आजभी विश्वका कोना-कोना आलोकित है। इस पुण्यभूमिके अंचलमें अनेक उत्कर्षों और अपकर्षोंके इतिहास छिपे हुए हैं। अब वह सैकड़ों वर्षोंके पश्चात् पुनः स्वनामधन्य मदनमोहन मालवीयजी तथा ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके चिरस्मरणीय सत्प्रयासोंसे गौरवान्वित हो रहा है। उन्हींके द्वारा संस्थापित श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघकी अनेक विकासमयी योजनाओंके माध्यमसे इस स्थानने करवट बदली है। संघ द्वारा यहाँ अनेक कार्य निर्माणाधीन हैं, जिनके सम्पन्न हो जाने पर मथुरा नगरी पुनः अपने प्राचीन गौरवको प्राप्त कर लेगी।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके पावन प्रांगणमें उसके विशाल रंगमंचपर आये दिन अनेक धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सवोंके आयोजन होते रहते हैं। इन्हीं महोत्सवोंके कारण श्रीकृष्ण-जन्मस्थान अत्यन्त लोकप्रिय और पर्यटकोंकेलिये आकर्षणका केन्द्र बन गया है। प्रतिदिन देश-विदेशके हजारों विशिष्ट व्यक्ति यहाँ आते और भगवान् श्रीकृष्णके चरणोमें अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करते रहते हैं।

श्रीलक्ष्मीनिवासजी बिरलाका शुभागमन

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके उत्तराधिकारी श्रीलक्ष्मीनिवासजी बिरला संघके सम्माननीय सदस्यके रूपमें १५ अगस्त १९६८ को प्रथम बार यहां पधारे। सबसे पहले उन्होंने मन्दिरमें प्रतिष्ठापित भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहकी मनमोहिनी झाँकीके दर्शन किये। तदुपरान्त श्रीकृष्ण-जन्मस्थानका दर्शन करते हुये उन सब भवनोंको देखा, जो निर्मित हो चुके हैं तथा निर्माणाधीन हैं। विशाल भागवत-भवन तथा अन्तर्राष्ट्रीय अतिथिशालाके निर्माण-कार्योंने श्रीबिरलाजीको अत्यधिक प्रभावित किया और उन्होंने उनकी शीघ्र सम्पन्नताकेलिए शुभकामनाकी। आशाकी जाती है कि श्रीलक्ष्मी-

निवासजी विरला स्वर्गीय श्रीजुगलकिशोरजी विरलाकी भाँतिही श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके पुनरुद्धार-कार्यको गतिशील बनायेंगे।

श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव

श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर वैसे तो सदाही कोई-न-कोई उत्सव होता ही रहता है, किन्तु श्रीकृष्ण-जन्मोत्सवने एक ऐसा रूप ग्रहण कर लिया है—जिसके प्रति न केवल मथुरा वृन्दावन तथा व्रजके निवासियोंका, अपितु देश-विदेशके समस्त श्रीकृष्ण प्रेमियोंका आकर्षण वढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि इस वर्ष श्रीकृष्ण व जन्मोत्सवमें लाखों नर-नारियों ने भाग लिया। इस वर्ष यह महोत्सव १६ अगस्तको मनाया गया। उस दिन प्रात:कालसे ही देश-विदेशके पर्यटक अपने इष्ट-देवताके पुनीत एवं प्रिय जन्मस्थानपर एकत्र होने लगे और मध्यरात्रि तक उनका आवागमन बना रहा। जन्मस्थानके विशाल रंगमंचपर प्रात:काल ८ बजेसे ११ बजे तक श्रद्धांजलि-समारोह हुआ, जिसमें श्रीप्रभुदयालजी मीतल तथा डा० व्रजेश्वर वर्मा आदि विद्वानों ने भाग लिया। स्थानीय चमेलीदेवी खण्डेलवाल इण्टर कालेज तथा मान्टेसरी स्कूलकी छात्राओंने नृत्य-संगीतके आकर्षण कार्यक्रम प्रस्तुत किये। इस वर्ष श्रद्धांजलि-समारोहके मुख्य अतिथि आगरा मण्डलके आयुक्त श्री के० के० शर्मा थे। उन्होंने आदिसे अन्ततक सभी कार्यक्रम देखे और उनकी भूरि-भूरि प्रशंसाकी। आकाशवाणीके मथुरा केन्द्र ने इस कार्यक्रमको रिकार्ड करके रात्रिमें उसका प्रसारण किया।

शोभायात्रा

जन्माष्टमीके दिन अपराह्नमें चार बजेसे शोभायात्रा निकली, जो मथुराके मुख्य बाजारोंका परिभ्रमण करती हुई श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर समाप्त हुई। शोभायात्राकी झांकियां दर्शनीय थीं।

श्रीकृष्ण-लीला

शोभायात्राके पश्चात् रात्रिमें ८ बजे से १२ बजे तक वृन्दावनके सुप्रसिद्ध स्वामी कुंअरपालजीकी मण्डली द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म-लीलाका प्रभावशाली प्रदर्शन हुआ। यह कार्यक्रम ६ दिनों तक चलता रहा, जिसमें विभिन्न कृष्ण-लीलाओंका प्रदर्शन होता रहा। अंतिम दिन सुदामा-लीलासे यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

इस महोत्सवका आयोजन प्रतिवर्ष श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके तत्त्वावधानमें मथुराकी श्रीकृष्ण-जन्म-महोत्सव समिति द्वारा होता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस वर्षका आयोजन गत वर्षोंकी अपेक्षा अधिक सफल रहा तथा आशा है कि उत्तरोत्तर और भी सफल होता जायेगा।
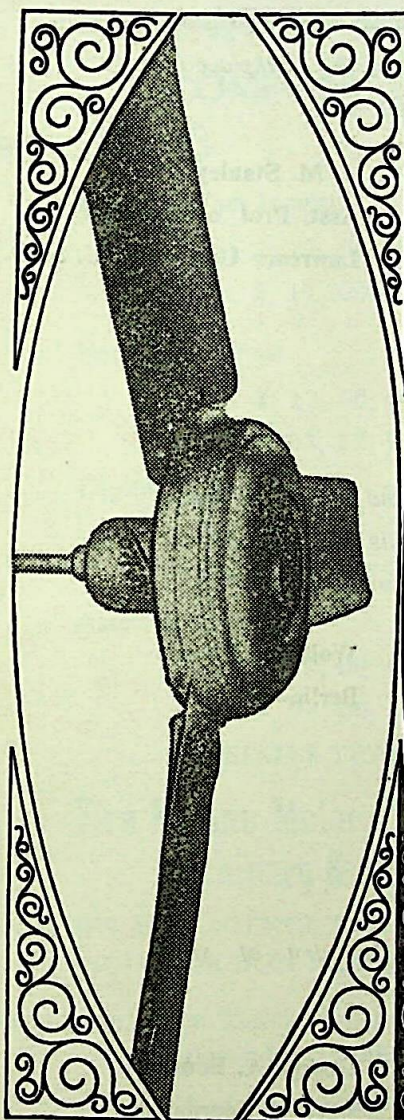
अनेक वर्षों तक
उमस भरी गर्मियों को
सुहावना बनानेवाला ओरिएन्ट पंखा
ओरिएन्ट
सीलिंग पंखा
दो वर्षों की गारन्टी
ओरिएन्ट जेनेरल इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, कलकत्ता-५४
ASP/OGI-2/66

It has been an honour and a pleasure to visit this shrine of the birthplace of Lord Krishna. Thank you.

J. M. Stanley
Asst. Prof. of Religious
Lawrence University (U. S. O.)

The love, respect and honour payed to Lord Krishna at this holy place gave me a very deep impression.

Wolfgand Menzel
Berlin–46

Thank you for the visit of your beautiful temple.

George A. Bousqust
(French Journalist)
FRANCE

जन्माष्टमी महोत्सवकी एक झलक :

जन्माष्टमीके दिन आयोजित समारोहमें श्रद्धाञ्जलि भाषण करते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्रीप्रभुदयालजी मीतल
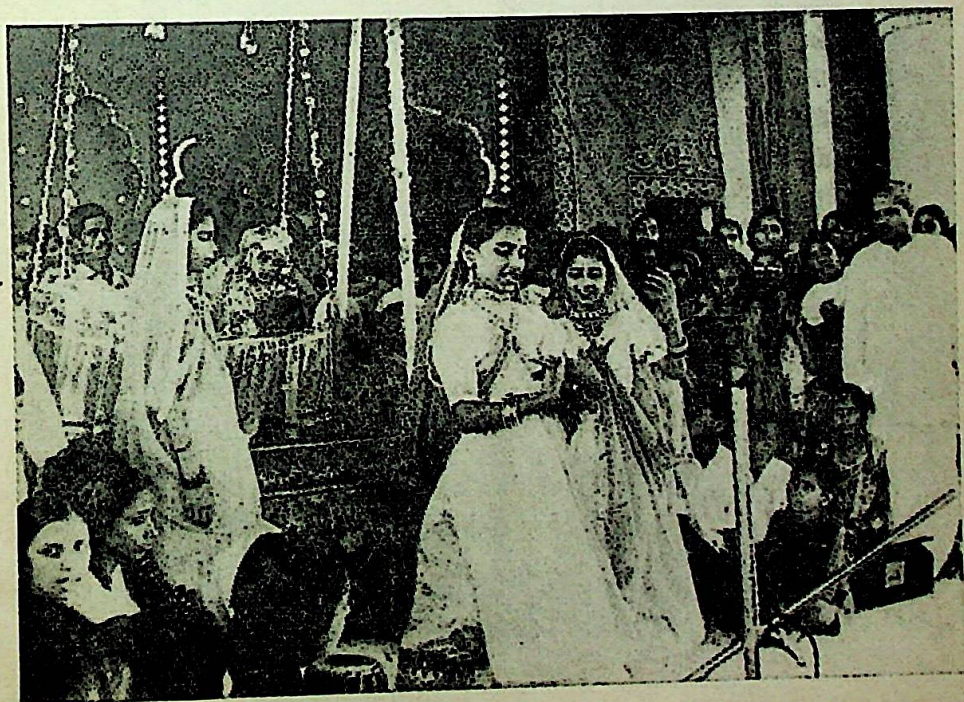
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान पर जन्माष्टमीकी झाँकीका एक दृश्य

पठनीय ! संग्रहणीय !!

जीवन-जाह्नवी : स्मृति-मन्दाकिनी : संस्कृति-सेतु
तीन खण्डोंमें विभक्त श्रीजुगलकिशोर बिरला
श्रद्धाञ्जलि ग्रन्थ

'एक विन्दु : एक सिन्धु'

अवश्य पढ़िये

ग्रन्थकी कुछ विशेषतायें—

- ख्यातिप्राप्त विद्वान् लेखकोंकी कलमसे
- अनुपम, प्रेरक एवं उद्बोधक रचनाएँ
- आर्य-धर्म (हिन्दुत्व) के प्रचार-प्रसारकी दिशामें विगत अर्द्ध शताब्दिका लेखा-जोखा

श्रीकृष्ण-सन्देशके ग्राहकोंको लागत मूल्य
पन्द्रह रुपये मात्रमें

आज ही लिखकर मँगाइये—

प्रकाशन-विभाग
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
केशवदेव कटरा, मथुरा (उ० प्र०)

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघके लिये देवधर शर्मा द्वारा बम्बई भूषण प्रेस, मथुरामें
मुद्रित तथा प्रकाशित। आवरण मुद्रक : राधाप्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-३१